बान्धव ग्रंथमाला नं० १२

महात्मा बुद्ध
का
जीवन-चरित

श्रीवृन्दावनलाल वर्म्मा द्वारा संकलित।

कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी अध्यक्ष
राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस
द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

आगरा
राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस।
सं० १९६५ वि०

प्रथमावृत्ति

मूल्य ।)

सूचना ।

इस पुस्तक का पूर्ण मुद्रण-स्वत्व कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी अध्यक्ष राजपूत-ऐंग्लो ओरियण्टल प्रेस, आगरा को दिया गया है ।

भूमिका।

बुद्ध के जन्म के समय भारतवर्ष में वैदिक धर्म्म लुप्त-प्राय होगया था और वाममार्ग की बड़ी प्रबलता होरही थी। यों तो महाभारत के सर्वनाशी भीषण संग्राम के बाद ही से भारत का अधःपतन आरम्भ होगया था परन्तु बुद्ध के ३ शताब्दी पहले (विक्रम के कोई एक हजार वर्ष पहले) भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय होगई थी। वाममार्ग ने भारत को हिंसा और दुराचार में ऐसा लिप्त किया, कि इसके उद्धारकी बहुत थोड़ी आशा रही। अधिकांश लोग वेद का नाम तक भूल गये थे। इसी दुस्समय में, मानो भारत को बचाने के लिये, ईश्वर ने बुद्ध को जन्म दिया।

बुद्ध देव ने इन दुष्कर्मों को रोकने और हिंसारहित पवित्र जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। महात्मा बुद्ध ने बड़े परिश्रमके साथ विद्याध्ययन और ज्ञान सम्पादन किया था। ये पूर्ण विद्वान्, सर्वशास्त्रवेत्ता और संयमी पुरुष थे। इनका जीवन निस्पृह और निर्दोष था। ये मनुष्यमात्र के हितकारी सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते थे। अतः इनको अपने उपदेशकार्य में बड़ी सफलता प्राप्त हुई। बहुत सुगमता के साथ सम्पूर्ण भारतवर्ष में बौद्धमत का प्रचार होगया। पीछे से बौद्धमत के प्रचारकोंने तिब्बत, नैपाल, तातार, मङ्गोलिया, जापान, चीन, अनाम, ब्रह्मदेश, सिंहलद्वीप (लङ्का), स्याम, मलाया, कोरिया, मंचूरिया, साइबेरिया का कुछ भाग, बाल्हीक (आधुनिक उत्तर अफ़ग़ानिस्तान, चित्राल और

बुख़ारा) गान्धार (आधुनिक क़न्दहार, उत्तरीय और पूर्वीय बलोचिस्तान और ग़ज़नी—यहां पर आर्य राजा राज्य करते थे) आदि दूर दूर तक के देशों में जाकर इस मत का प्रचार किया। इन में से बाल्हीक और गान्धार को छोड़ कर अन्य देशों में इस धर्म की जड़ जम गई। बौद्ध धर्म का प्रभाव अब भी उन देशों में बना हुआ है। भारतवर्ष से चीन में कुछ बौद्ध परिव्राजक इस धर्म का प्रचार करने गये थे। विक्रमी सम्वत् के १६० वर्ष पूर्व इन लोगों का जाना सिद्ध होता है।

विक्रमी सम्वत्के ४ वर्ष पूर्वतक चीनमें बौद्धधर्म बहुत शीघ्रता के साथ नहीं फैलसका, क्योंकि सब लोगोंका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट न हुआ था। परन्तु जब (वि० पू० ४ वर्ष) चीन सम्राट् मिङ्ग-ती चीन के सिंहासन पर बैठे, तब यह चीन भर का धर्म हो गया। यहींसे यह जापान इत्यादि देशों में फैल गया। समय समय पर चीनी यात्री भारत में बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखने वाली नई बातें जानने के लिये आते रहे। उनकी प्रकाण्ड धर्म-रुचि का इस से अच्छा पता लगता है।

आज तक दुनिया में जितने धर्म निकले हैं, उनमें से सब से अधिक अनुयायी इसी धर्म ने आकृष्ट किये हैं,—दुनिया में बौद्ध सब से अधिक हैं। आजकल इस धर्मका यूरोप व अमेरिका में अधिक प्रचार हो रहा है। बहुधा विद्वान् पुरुष ईसाईमत छोड़कर बौद्धधर्म स्वीकार करते जातेहैं। इस मतके अनेक ग्रन्थोंके अंगरेज़ी आदि भाषाओं में अनुवाद हो गये हैं। इन यूरोपियन लोगों ने पाली भाषा बड़ी बड़ी कठिनाइयोंसे सीखकर, तथा बौद्ध ग्रन्थों

को बड़े परिश्रम से खोज कर उनका अंगरेज़ी, फ्रेञ्च, जर्मन आदि भाषाओं में अनुवाद किया है। खेद है कि जिन महात्मा बुद्ध के विचारों को अन्य देशों में इतनी क़दर हो रही है, उनका कोई विस्तृत जीवन-चरित्र अब तक भारत की भावी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में नहीं प्रकाशित हुआ। इस अभाव को देख कर, कुंवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी अध्यक्ष 'राजपूत ऐंग्लो-ओरिएण्टल प्रेस आगरा' व सम्पादक 'स्वदेश-बान्धव' के अनुरोध से यह संक्षिप्त 'जीवन-चरित' अल्प समय में लिख कर पाठकों को भेंट करता हूं। यदि यह रुचिकर हुआ तो बहुत शीघ्र बुद्ध का विस्तृत जीवन-चरित्र प्रकाशित करूंगा।

मैं कुंवर हनुमन्तसिंह जी को विना धन्यवाद दिये नहीं रह सकता। आप चाहते हैं, कि हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित करें, परन्तु जब तक उत्तम पुस्तकों की सर्व साधारण हिन्दी भाषी जनों में गुणग्राहकता न हो तब तक हिन्दी भाषा के साहित्य का उत्कृष्ट होना कठिन मालूम होता है।

मैंने इस पुस्तक के लिखने में J. Barthetemy Saint Hillaine कृत "बुद्ध का धर्म" और Marcus Dods, D. D. कृत "मुहम्मद, बुद्ध और ईसा" नामक पुस्तकों से बहुत कुछ सहायता पाई है, इस से मैं इनका कृतज्ञ हूं।

झांसी, बुन्देलखण्ड
भाद्र शुक्ला तृतीया सं० १९६५ वि० } वृन्दावन लाला वर्मा।
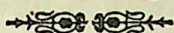
महात्मा बुद्ध ।

विक्रमी सम्वत से ७०० वर्ष पहिले कपिलवस्तु नामक राज्य की राजधानी कपिलवस्तु* नगर में महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था । आज कल की अवध सीमा के उत्तर, नैपाल-पर्वतों के ठीक नीचे यह राज्य था ।

लङ्का में एक ग्रन्थ महावंश नाम का है । उसमें बुद्ध के पैदा होने का वर्ष विक्रमी सं० से ५६६ वर्ष पहिले और निर्वाण ४८६ वर्ष पूर्व लिखा है, और महानिर्वाण ८० वर्ष पीछे । कई एक यूरोपियन विद्वानों ने इस की जन्मतिथि ४२३ वर्ष वि०पू० (४८० ई०पू०) सिद्ध करना चाही है, और निर्वाणतिथि ठीक ८० साल बाद । इन सब में लंका के महावंश का महत्व विशेष है । यह ग्रन्थ पाली भाषा में लिखा गया है । यह ग्रन्थ सं० ५१६ और ५३४ के बीच में लिखा गया था, इस कारण प्राचीन है, और प्राचीन होने से क्या, तरतीबवार बहुत है इस कारण इस की तिथि अधिक मानने के योग्य है । कपिलवस्तु में सूर्य्य वंशीक्षत्रियों की शाक्य शाखा राज्यशासन करती थी । इन्हें गौतम भी कहते थे । बुद्ध जी के पिता का नाम

---

* विक्रमी सम्वत् की पांचवीं शताब्दी के आदि में फ़ाहियान नामक एक चीनी यात्री भारत में आया था। उस समय कपिलवस्तु उजाड़ हो गया था । इस के दो सौ वर्ष बाद लगभग सम्वत् ६८९ विक्रमी में ह्यूनसेङ्ग ने भी इन खंडहरों को देखा था । वह इन की बड़ी संख्या बतलाता है । राजा के महल और उपवन का चतुर्कोट २ मील की परिधि में बतलाता है । यह चतुर्कोट उस समय साफ़ दिखलाई देता था । इन खँडहरों में लोगों ने ह्यूनसेङ्ग को बुद्ध की माता का शयनागार और युवक गौतम के अध्ययन का कमरा चिन्हाया था ।

शुद्धोदन था। यह उस समय राजा थे। बुद्ध की माता का नाम मायादेवी था। यह राजा स्वप्रबुद्ध की पुत्री थी।

मायादेवी रूप लावण्य में बहुत प्रसिद्ध थी। मायादेवी के शुभ गुण और उस की प्रतिभा, सुन्दरता से बहुत बढ़े हुए थे, क्योंकि उसे विद्या और धर्म के सर्वोत्कृष्ट और सर्वश्रेष्ठ तत्व प्राप्त हुए थे। शुद्धोदन अपनी रानी के योग्य था, वह नियमानुसार राज्यशासन करता था। शाक्य लोगों में कोई भी राजा अपनी प्रजा से—मन्त्रियों और दरबारियों से लेकर साधारण गृहस्थ और व्यापारियों तक से—इतना सम्मानित नहीं हुआ जितना शुद्धोदन हुआ था।

यह श्रेष्ठ घराना इसी योग्य था कि इस में महात्मा बुद्ध से जन्म ग्रहण करें। बुद्धदेव क्षत्रिय अर्थात् योद्धा-जाति से थे इसलिये अपने यौवन काल तक योद्धाओं के से कार्य करने योग्य गुण सम्पादन करते रहे और जब अन्त में उन्होंने धार्मिक जीवन स्वीकार किया तो अपने पुराने प्रसिद्ध घराने के नाम से शाक्य मुनि या श्रवण गौतम कहलाये थे। इनके पिता ने इन का नाम सिद्धार्थ या सर्वार्थसिद्ध रक्खा था। इन का यह नाम तब तक रहा जब तक कि युवराज थे।

गर्भवती होने पर प्रसव समय के निकट महारानी मायादेवी अपनी मातामही के लुम्बिणी* नामक उपवन में चली गईं। वहां पर उन के गर्भ से उत्तराषाढ़ की

---

* मातामही लुम्बिणी या लुम्बिनी के नाम से यह उपवन भी लुम्बिणी नाम से प्रसिद्ध हुआ। लुम्बिणी उपवन कपिलवस्तु से २४ मील उत्तर पश्चिम था। ह्यूनसैङ्ग इस स्थान पर गया था।

तीसरी तारीख, या जैसा कुछ ग्रन्थ कहते हैं, वैशाख की १५ वीं को बालक सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जिस समय सिद्धार्थ गर्भ में थे मायादेवी ने बड़े कड़े व्रत किये थे, इस कारण वह बहुत निर्बल हो गई थीं। ब्राह्मण पंडितों ने यह भविष्य वाणी की थी, कि होने वाला बालक योगी होगा, और भिक्षा इत्यादि से जीवन निर्वाह करता हुआ मारा मारा फिरेगा। इस कारण उन का दिल टूट गया था। वह अपने बच्चे को माता को त्याग कर भीख मांगते हुए मारा मारा फिरते हुए नहीं देख सकतीं थीं। इन कारणों से सिद्धार्थ को जन्म देने के सात दिन बाद वह परलोकवासिनी हुईं। माताहीन बच्चा मायादेवी की बहिन और सौत प्रजापति गौतमी के सुपुर्द हुआ। यह प्रजापति गौतमी सिद्धार्थ के बुद्ध होने पर उस के बड़े से बड़े भक्त शिष्यों में से एक थीं।

बालक अपनी माता सदृश ही सुन्दर था, और ब्राह्मण पण्डित असित ने, जो पुराने देवमन्दिर में लेजाने के कर्त्तव्य पर नियुक्त था, कहा, कि उस के चक्रवर्ती होने के ३२ मुख्य लक्षण हैं, और ८० दूसरे। कुछ हो, सिद्धार्थ चक्रवर्ती राजा नहीं तो चक्रवर्त्ती धर्म्माचार्य्य हुए। जब वह पाठशाला भेजे गये, उन्हों ने अपने गुरुजनों से भी अधिक प्रतिभा दिखाई। उन में से एक का नाम विश्वामित्र था, सिद्धार्थ उसी की शिक्षा में अधिक रक्खे गये थे, उस ने कुछ दिन पीछे कह दिया कि अब मेरे पास और अधिक कुछ भी सिखाने को नहीं है। अपनी उम्र वाले सहपाठियों के साथ यह बाल्यावस्था में खेल कूद में भाग नहीं लेते थे; उस समय भी वे उच्चतर

विचारों में मग्न दिखाई पड़ते थे। मनन करने के लिये वह प्रायः अलग रह कर एकान्त सेवन करते थे। एक दिन जब वे अपने साथियों के साथ ग्राम्यक्षेत्र देखने गये तो अकेले एक जंगल में घूमते फिरते चले गये। वहां वे कई घंटे रहे। कोई नहीं जान सका, कि कहां गये। शुद्धोदन बड़े चिन्तित हुए, और स्वयं ढूंढने को निकले। उन्हों ने सिद्धार्थ को जंगल में जम्बू वृक्ष की छाया में ध्यान में अत्यन्त निमग्न पाया।

अब युवक राजकुमार के विवाह का समय निकट आ पहुंचा। शाक्य लोगों में से वृद्ध पुरुषों को ब्राह्मण पंडितों की यह भविष्य वाणी खूब याद थी कि राज-मुकुटकी अपेक्षा सिद्धार्थ योग-मठन अधिक पसन्द करेगा। इस कारण उन लोगों ने राजवंश की वृद्धि के लिये राजकुमार के शीघ्र ही व्याह करने की प्रार्थना की। विवाह से नवयुवक को सिंहासन से चपेटने की उन्हें आशा थी। राजा सिद्धार्थ के विचारों से खूब जानकारी रखते थे। वे स्वयं उन से इस बात के छेड़ने का साहस न कर सके। उन्हों ने वृद्ध पुरुषों को बात चीत करने के लिये कहा। सिद्धार्थ ने, जोकि इन्द्रिय के बुरे प्रभावों से विष, अग्नि या तलवार की अपेक्षा अधिक डरते थे, सोचने विचारने के लिये सात दिन का समय चाहा। खूब सोचने पर प्रार्थना स्वीकार की। उन्होंने विचार किया कि पूर्व ऋषियोंने भी व्याह किये हैं, और उन के कर्त्तव्य में रुकावट नहीं डाल सका तो यह मेरे शान्त अध्ययन, ध्यान और मननमें भी विघ्न नहीं डाल सकता।" इस तरह सोच विचार करने के बाद उन्होंने एक शर्त

पर व्याह करना स्वीकार किया कि "मेरे विवाह के लिये जो स्त्री ठीक की जावे, वह नीचहृदया या अशुद्ध न हो। यदि वह वैश्य या शूद्र कन्या भी हो तो कुछ हर्ज नहीं। मैं उसे उसी प्रसन्नता के साथ ग्रहण करूंगा जैसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कन्या को। उस में मेरी इच्छानुसार गुण अवश्य होने चाहिये।" सिद्धार्थ जिन जिन गुणों को अपनी अर्द्धाङ्गिनी में चाहते थे उनको उन्होंने एक लम्बी सूची तय्यार की, और वृद्ध पुरुषों के हाथों दी कि उन लोगों को मनचाही दुलहिन ढूंढने में सहायता मिले।

अब राजपुरोहितने अपना काम आरंभ किया। वह इधर उधर आवश्यक लड़की की खोज करने लगा। नवयुवतियोंमें से सिद्धार्थके लिये योग्य जोड़ी ढूंढने लगा। सिद्धार्थ ने गुणों की जो सूची तय्यार की थी उस के अनुकूल योग्य कन्या का मिलना कठिन हो गया। अन्त में एक कुमारी में सब अभिलषित गुण पाये गये। उस ने पुरोहित से सिद्धार्थ की पत्नी होने की प्रार्थना की। निदान वह बहुत सी योग्य और सुन्दर सखियों के साथ सिद्धार्थ के सामने बुलाने पर गई। युवक गौतम ने उसे पसन्द किया और शुद्धोदन ने भी इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया परन्तु इस लड़की का पिता, जो शाक्य घराने का था और जिस का नाम दण्डपाणि था, इस खिलवाड़ के विवाह से सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह सिद्धार्थ को आलसी, निरुद्यमी, और एकान्त-सेवी समझता था। उसका विचार था कि गौतम में क्षात्र गुणों की हीनता है, क्षत्रियोचित पराक्रम का अभाव है। दण्डपाणि ने स्पष्ट कह दिया, "पूर्व इस के कि सिद्धार्थ

मेरी कन्या का पाणिग्रहण करे, उसे सब प्रकार की विद्या में अपने को सिद्धहस्त प्रमाणित करना पड़ेगा।" उस ने कुछ क्रोध पूर्वक यह भी कहा कि "राजकुमार महलों में आलस की गोद में खेलता है, परन्तु हमारी जाति का यह नियम है कि पुत्रियां केवल उन्हीं लोगों को दीजावें जो मर्दाना कामों में निपुण और अभ्यस्त हों, न कि उन को जो शस्त्र विद्या से अपरचित हों। इस कुमार ने कभी तलवार चलाना, मुष्टि प्रहार, धनुष की की प्रत्यञ्चा को चढ़ाना, मल्ल विद्या, और युद्ध शास्त्र नहीं सीखा है, तो फिर मैं कैसे एक ऐसे अयोग्य वर को अपनी प्यारी कन्या सौंप दूंगा?"

अब राजकुमार सिद्धार्थ उन गुणों के दिखाने को विवश हुए जो स्वयम्वर के लिये आवश्यक थे। स्वयंवर का यज्ञ आरम्भ हुआ। ५०० नवयुवा शाक्य वीर, जो शस्त्र संचालन में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे, एकत्रित हुए, और सुन्दर राजकुमारी जिसका नाम गोपा था जेता की अर्द्धाङ्गिनी होने की प्रतिज्ञा पर वहां उपस्थित हुई। राजकुमार सिद्धार्थ ने बहुत सुगमता से अपने को उन शाक्यों से बढ़ा चढ़ा सिद्ध कर दिखाया। उसके प्रतिस्पर्द्धी मुंह बाऐ रह गये। यह स्वयम्वर की परीक्षा दण्डपाणि ने बहुत सी विद्याओं में ली थी। सिद्धार्थ ने लेखन विद्या, गणित, व्याकरण, तर्क, न्याय, और वेद शास्त्र में अपने प्रतियोगियों से तो सर्वोपरि प्रमाणित किया ही, किन्तु जितने वहां परीक्षा के परीक्षक थे उन से भी अपना पद ऊंचा सिद्ध कर दिया। वे अपने परीक्षकों से भी अधिक विद्वान् और बढ़े चढ़े थे, वे लोग इनकी विद्यायोग्यता देख

दङ्ग रह गये। अब मानसिक अभ्यासों के पीछे शारीरिक व्यायामों का नम्बर आया। उन्होंने अपने सब साथियों को कूदने, फांदने, तैरने, दौड़ने, धनुष खींचने और दूसरे कामोंमें हरा दिया। इन बातोंमें उनकी जानकारी, और उनका अभ्यास पूर्णतः सिद्ध हुआ। उनके प्रतिद्वन्दियों में उनके दो चचेरे भाई भी थे। एक का नाम आनन्द था जो उनके बुद्धत्व पानेपर उनका एक बहुत बड़ा और पक्का भक्त शिष्य हुआ, और दूसरे का नाम देवदत्त था जो स्वयंवर में हार जाने के कारण बड़ा क्रोधित था, और अन्त में सिद्धार्थ का विकट शत्रु हो गया था। सिद्धार्थ को अपनी विजय का पारितोषिक सुन्दरी गोपा के रूप में मिला। गोपा भी जैसा अपने को समझती थी उसी योग्य पद पर पहुंचगई और युवराज्ञी पद से विभूषित हुई। उसने घर के लोगों के रोकने पर भी महल वालों के सामने अपना मुख ढांपना बन्द कर दिया। इस के लिये उसने प्रमाण दिया कि "वे जो धर्मात्मा हैं, चाहे बैठे हों, खड़े हों और फिरते हों सदा दर्शनीय हैं। एक मूल्यवान् दम-दमाता हुआ हीरा झंडे की चोटी से और भी अधिक उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। जो स्त्रियां अपने मन को अपने वशमें रखतीं हैं और जितेन्द्रिय हैं वे अपने पतिसे सन्तुष्ट रहती हैं, परपुरुष को तुच्छ समझती हैं और उस का विचार तक नहीं करतीं, उन्हें मुंह ढांपने और पर्दा डालने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे तो सूर्य और चन्द्र के समान स्वयं उज्ज्वल हैं। श्रेष्ठ और पवित्रात्मा ऋषि, और दूसरे देवगण भी मेरे विचारों को जानते हैं, और मेरे चरित्र, धर्म, सत्य और नम्रता को ख़ूब समझते

हैं तो फिर मुझे मुंह ढांपने की क्या आवश्यकता है ?"

ऐसे प्रेम और ऐसी पवित्रता के साथ यद्यपि इस जोड़ी का जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा था, तथापि सिद्धार्थने जिन विचारोंका पहलेही से निश्चय कर लिया था उन्हें वे न बदल सके। वे अपने विशाल महल में हर तरहके भोग विलासके सामानों से घिरे हुए थे, और आमोद प्रमोदकी किसी वस्तु की कमी न थी परन्तु जिस पवित्र जीवन का उन्होंने दृढ़ संकल्प किया था उसे वे किसी तरह भी नहीं छोड़ सकते थे। एक दिन उन्हों ने अपने मन में बड़ी उदासीनता के साथ कहा, "यह सम्पूर्ण संसार बुढ़ापे और बीमारी के दुःखों से परिपूर्ण हो रहा है। मृत्यु की आगसे निगला जारहा है और हर तरह के सहारेसे वञ्चित है। मनुष्य का जीवन आकाश में बिजली की चमक के समान है, जैसे एक झरना पहाड़ से नीचे झड़ाके के साथ बहता है उसी तरह यह जीवन विना किसी रोक टोक के बहुत जल्द चला जाता है। इतना जल्दी जाता है कि कोई रोक नहीं सकता। इस संसार में तृष्णा से और अज्ञान से जीव बुरे मार्गों में जा रहे हैं। जिस तरह कुम्हार का चक्र बार बार घूमता है, उसी तरह अज्ञान पुरुष भ्रमते फिरते हैं। तृष्णा की प्रकृति, जो कि भय और दुःख से मिली हुई है, सब कष्टों की मूल है। इससे तलवारकी तीक्ष्ण धार से भी अधिक डरना चाहिये और विषैले वृक्ष के पत्ते से अधिक भयङ्कर समझना चाहिये। यह छाया है, प्रतिध्वनि है, लहर है, स्वप्न के सदृश है, एक निस्सार और पोची वक्तृता के समान है, जादू जैसी धोखेबाज़ी भरी हुई है, पानी के बबूले के बराबर है।

रोग मनुष्य की शारीरिक सुन्दरता का नाश कर देता है, ज्ञानेन्द्रियों को निर्बल कर देता है, मनोवृत्तियों और बल का ह्रास कर देता है और धन व कुशलता का गला घोंट डालता है । इस से बार बार मौत होती है और आवागमन का पचड़ा लगा रहता है । प्रत्येक जीव चाहे वह कितना ही प्यारा, अत्यन्त सुन्दर और महा ममतापूर्ण हो परन्तु सदा के लिये आंखों की ओट हो जाता है । तब मनुष्य असहाय, अकेला और निराश्रित मारा मारा फिरता है । उसके पास केवल उसके सांसारिक श्रमों का फल रह जाता है और कुछ भी नहीं । "

इसी तरह और और निम्न लिखित उदासीनता के वाक्य वह प्रायः कहा करता था:—

सब संगठित वस्तुओं का नाश होगा । जो कुछ गठित है वह नाश्य है, यह मिट्टीके बासन के समान है जो थोड़े से धक्के से टुकड़े टुकड़े हो जावेगा, उधार के धन के बराबर है, रेत के बने हुए घर के या नदी के रेतीले किनारेके सदृश है । सम्पूर्ण गठित वस्तुऐं कार्य और कारण में परिणत हैं । एक दूसरे में इस तरह भिदी हुई हैं जिस तरह बीज में अंकुर, यद्यपि अंकुर बीज नहीं है । ज्ञानी और बुद्धिमान् दिखाऊ सूरतों के झंझट में नहीं फंसते । उदाहरण के लिये वह लकड़ी जो रगड़ी जाती है, और वह जिस से वह रगड़ खाती है और हाथों का काम, ऐसी तीन बातें हैं जिन से आग पैदा हो जाती है परन्तु वह आग विलुप्त हो जाती है और वह ऋषि जो नये अर्थ को ढूंढ़ता है, अचम्भा करता हुआ कहता है यह कहां से आई और कहां चली गई ? जब जीभ होठों या तालू या

कण्ठ पर बल मारती है, तब शब्द निकलते हैं। और भाषा मस्तिष्क के सहारे बन जाती है परन्तु सम्पूर्ण बात चीत केवल प्रतिध्वनि मात्र है और भाषा का स्वयं अस्तित्व नहीं है। फिर सितार से जो ध्वनि निकलती है उस के विषय में ऋषि अचम्भित हो कर कहता है कि यह कहां से आई और कहां चली गई ?

इस तरह सब सूरतें कार्य और कारण से पैदा हुई हैं और योगी या ऋषि को ध्यान करने पर जल्दी मालूम हो जाता है, कि सूरतें कुछ भी नहीं हैं और यह अकेला कुछ नहीं का तत्व ही अपरिवर्त्तनीय है। जो वस्तुऐं हमें अपनी इन्द्रियों के द्वारा मालूम होती हैं वे असल में हैं हीं नहीं, उनमें स्थिरता नहीं है और यह स्थिरता ही है जो धर्म का मुख्य लक्षण है।

यह धर्म जो संसार को बचाने के लिये है, मैं समझता हूं और मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इसे मनुष्यों पर प्रगट कर दूं। मैंने कई बार सोचा है कि जब मैं पूरा ज्ञान पाजाऊंगा, सब मनुष्यों को इकट्ठा करूंगा और उन्हें अमरत्व के द्वार में जाने का ढंग बतलाऊंगा। भवसागर के चौड़े समुद्र से उबार कर उन्हें सन्तोष और सहिष्णुता की पृथ्वी पर स्थित करूंगा। इन्द्रियों के कष्टप्रद विचारोंसे स्वतन्त्र करके मैं उन्हें शान्ति में स्थिर करूंगा। जीव जो अज्ञान के गहरे अंधेरे में सड़ रहे हैं उन्हें धर्म का प्रकाश दिखाने के लिये उन्हें नेत्र दूंगा जिन से वे पदार्थों को जैसे वे सचमुच हैं देखलें, मैं उहें निर्मल ज्ञान की सुन्दर चमक भेंट करूंगा, उन्हें अपवित्रता और खुटाई से रहित धर्म के चक्षु दूंगा।

ये गम्भीर विचार युवक सिद्धार्थ को उस के स्वप्नों तक में सताते थे। एक दिन उसने सुना कि स्वप्न में कोई उस से कह रहा है कि "जो संसार पर प्रगट करना निश्चित कर चुका है उस का समय आ चुका है। जो स्वतन्त्र नहीं है वह दूसरों को स्वतन्त्र नहीं कर सकता। अन्धा अन्धों को मार्ग नहीं बतला सकता, जो उद्धार पा गया है वही दूसरों का उद्धार कर सकता है, जिस के आंखें हैं वह उन लोगों को मार्ग बता सकता है जो उसे नहीं जानते। उन लोगों को, चाहे वे कोई हों, जो सांसारिक तृष्णाओं से नष्ट हो रहे हैं, अपने घरों से चिपटे हुए हैं और अपने धन, आत्मज और पत्नी में रत रहते हैं उन्हें ठीक शिक्षा दो और उन में ऐसी इच्छा उत्पन्न करो कि वे संसार में भ्रमण करते हुए साधु सन्तों का पवित्र जीवन धारण करें।"

इसी बीच में राजा शुद्धोदन को इन बातों का कुछ सन्देह हो गया। वह उन बातों को ताड़ने लगा जो उसके लड़के के हृदय में उत्पन्न हो कर उस को बेचैन कर रही थीं। इस समय राजा की ममता और चिन्ता दस गुनी बढ़ गई। उसने सिद्धार्थ के लिये तीन नये महल बनवाये। एक बसन्त ऋतु के लिये, दूसरा गर्मियों के लिये और तीसरा जाड़ों के लिये। राजा डरता था कि कहीं राजकुमार सांसारिक दुःखों से घबड़ा कर निकल न भागे इसलिये उसने अत्यन्त कड़ी आज्ञा दे रक्खी थी, कि उस की प्रत्येक गति-मति पर दृष्टि रक्खी जावे। लेकिन यह सब होशियारी और सावधानी विफल हुई। जिन की कभी आशा न थी, जिन का कभी विचार

भी न था और जो विचित्र बातें थीं उन सबों ने मिल कर राजकुमार के निश्चय को और भी बढ़ता हुआ बल दिया। इन से सिद्धार्थ की दृढ़ता और भी दृढ़ हो गई।

यह एक दिन बहुत से लोगों के साथ लुम्बिनी उपवन को रथ में बैठ कर नगर के पूर्वी फाटक से जा रहे थे। यह उपवन इन्हें जन्म ही से प्यारा था क्योंकि यहां पैदा हुए थे। इस जगह जो इन्होंने बाललीला की थी उस की सुधि से यह उपवन और भी अधिक प्यारा हो गया था।

रास्ते में इन्हें एक बुड्ढा आदमी मिला। उस के बदन भर में झुर्रियां थीं और उसकी नसें और पुट्ठे ढीली रस्सियों की तरह मालूम होते थे, दांत बिलकुल हिलते थे, कठिनाई से दो चार घर्राते और बिगड़ते शब्द बोल सकता था। ऐसा निर्बल था कि शक्तिहीन हाथ में लकड़ी का सहारा होने पर भी पग पग पर गिरा चाहता था और उसकी झुकी कमर और सूखे अंग पत्ते की तरह हिल रहे थे।

राजकुमार अपने सारथी से बोले "यह आदमी कौन है? इसका क़द ठिगना है, बल से हीन है, इस का मांस और रक्त सूख गया है, इस के पट्ठे खाल के थैले में लटक रहे हैं, बाल सफ़ेद हैं, दांत हिलते हैं, और शरीर निकम्मा हो गया है, विचारा लकड़ी पर झुका हुआ बड़ी कठिनाइयों और क्लेश के साथ पग पग पर गिरता पड़ता अपने को घसीटे लिये जा रहा है। क्या इस के घराने ही की यह विशेषता है? या यह नियम सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये है?"

सारथी ने कहा, "कुमार, यह पुरुष बुढ़ापे के कारण इतना निर्बल हो गया है, इस की सब इन्द्रियां अशक्त हो गईं हैं, दुःखों ने इस के बल का नाश कर दिया है, इसके सम्बन्धियों ने इस से किनारा कर लिया है ; और इस का कोई रक्षक नहीं है, प्रत्येक काम में निकम्मा होने के कारण, यह जङ्गल में सड़ी हुई लकड़ी की तरह फेंक दिया गया है। यह कुछ इस के घराने की विशेषता नहीं है। जितने जीव हैं उन सब का यौवन बुढ़ापे से विजित हो जाता है, आप के माता पिता आदि सम्पूर्ण सम्बन्धी और बन्धु वर्ग का भी इसी तरह अन्त होगा। यह सब के लिये स्वाभाविक बात है।"

यह सुनकर सिद्धार्थ ने कहा "अज्ञान और निर्बल पुरुष में दूरदर्शिता नहीं होती, इसी कारण वह जवानी के मद में चूर हो कर घमण्ड करता है और आने वाले बुढ़ापे का विचार नहीं रखता। अब मैं आगे नहीं जाऊंगा। रथवान तुरन्त रथ को लौटाओ। मैं भी बुढ़ापे से आक्रमणित होने वाला हूं, फिर सुख भोग का क्या अर्थ ?" लुम्बिणी गये विना ही राजकुमार लौट आये।

फिर एक दूसरे दिन बहुत से सङ्गियों के साथ वह आनन्द उद्यान की तरफ़ दक्षिणी फाटकसे जा रहे थे कि वहां उन्होंने एक ज्वरपीड़ित, जीर्ण, क्षीण, मलीन और और बन्धुहीन बूढ़े को आह भरते मौत की बाट जोहते हुए पाया। अपने उसी रथवान से प्रश्न कर यथोचित उत्तर पाने पर कहाः—

" तब निरोगता केवल एक स्वप्न है और रोगों की असह्य यातना से कोई बच नहीं सकता है। यह प्राणी

पुरुष कहां है, जो इसे देख कर आगे के सुख और भोग विलास का अनुमान करे ?" इस तरह बिना आगे गये ही राजकुमार फिर नगर को लौट आये।

फिर एक दूसरे दिन वह पश्चिमी फाटक से आनन्द उद्यान को जा रहे थे कि मार्ग में उन्होंने एक मुर्दे को काठी पर जाते देखा, ऊपर कपड़ा पड़ा हुआ था, उसके साथ रोते हुए बान्धव जा रहे थे, अपनी चीत्कारों से, बाल खींचने से, मस्तक पर धूल डालने से, और छाती पीट पीट कर चिल्लाने से उन लोगों ने यह दृश्य और भी अधिक करुणापूर्ण कर रक्खा था। राजकुमार ने अपने रथवान से कहा "हा! शोक! उस जवानी पर जिसे बुढ़ापा नष्ट कर डालता है, हा! शोक! उस स्वास्थ्य और आरोग्यता पर जिसे रोग मटियामेट कर डालता है। हा! शोक! उस जीवन पर जो मनुष्य को इतना थोड़ा समय देता है। क्या अच्छा होता है यदि बुढ़ापा, रोग, या मृत्यु एक भी अस्तित्व न रखता होता। अहा! क्या अच्छा हो यदि बुढ़ापा, रोग और मौत सदा के लिये नष्ट कर दिये जाते।"

इस तरह अपना विचार प्रगट कर कुमार ने कहा "घर लौट चलो, मैं स्वतन्त्रता की प्राप्ति का उपाय अवश्य सोचूंगा।"

अन्तिम संयोग* ने सिद्धार्थ की सब चिन्ता और हिचकिचाहट दूर कर दी। अन्त में एक दिन वह आ-

---

*ये भिन्न २ संयोग बौद्ध पुराणों में प्रसिद्ध हैं। जहां जहां सिद्धार्थ का इन संयोग से मिलाप हुआ वहां वहां सम्राट् अशोक महाराज ने स्तूप और विहार बनवाये थे। विक्रमी सम्वत् की सातवीं शताब्दी के आदि में ह्यूनसेङ्ग ने इन के खंडहर देखे थे।

नन्द उद्यान के लिये नगर के उत्तरीय फाटक से जा रहे थे। उस जगह उन्हों ने एक शान्त, शुद्ध और गम्भीर प्रकृत ब्रह्मचारी भिक्षु को देखा उस की आखें नीचे को थीं, इधर उधर चञ्चलता से न डुलाता था और बड़े निस्पृह भाव के साथ अपने लबादे को पहने कमण्डल लिये जारहा था।

राजकुमार ने पूछा "यह कौन है ?"

रथवान ने उत्तर दिया "यह एक भिक्षु है। इसने सम्पूर्ण तृष्णामय इच्छाओं को त्याग दिया है और बहुत पवित्र जीवन व्यतीत कर रहा है। यह जितेन्द्रिय होने का प्रयत्न करता है और विरक्त साधु हो गया है। अब न तो इस में इच्छा का प्रचण्ड श्रोतः है और न इस में ईर्ष्या है, भिक्षा के सहारे रहता है।"

सिद्धार्थ बोला "ठीक कहा, बहुत ठीक है। ऋषियों ने पहले ही से इस उत्तम जीवन का आदर्श उपस्थित कर दिया है। यही मेरा आश्रय होगा और यही दूसरों का भी। यही जीवन सुख और शान्ति मय है।"

इस के बाद युवक सिद्धार्थ अपने घर विना लुम्बिणी गये ही एक निश्चित विचार पर दृढ़ीभूत हो कर लौट आये।

अब सिद्धार्थ का हार्दिक भाव बहुत दिनों तक न छिपा रहा। राजा को किसी ने शीघ्र सब हाल सुना दिया, और उन्होंने और भी अधिक कड़ाई के साथ पहरा और देख रेख का प्रबन्ध कर दिया। हर जगह प्रहरी बड़ी सावधानी से नियुक्त किये गये, सब फाटकों पर प्रहरी रहने लगे, और राजा के सेवक गण दिन रात बड़ी चिन्ता में रहने लगे। पहले पहले सिद्धार्थ ने

चालाकी से निकल भागना घृणास्पद समझा, और इसे किसी आवश्यकता के समय के लिये छोड़ दिया। उन्हें अपनी पत्नी गोपा पर बहुत विश्वास था। एक रात स्वप्न देखते देखते ये चौंक पड़े, ऐसा बहुधा हुआ करता था, गोपा ने इन स्वप्नों का कारण पूछा। उन्होंने साफ़ साफ़ बता दिया, और अपना भेद भी समझा दिया। भावी विछोह की चिन्ता में वह घबड़ाई परन्तु उन्होंने समझा बुझाकर शान्त किया। उसी रात को वे अपने पिता के पास गये, और बहुत ही आदर सन्मान और सङ्कोच के साथ बोले "महाराज अब वह समय आगया जिस समय मुझे पृथ्वी पर स्पष्टतया प्रगट होना चाहिये, मैं विनय करता हूं, कृपया विरोध मत कीजिये, और उसके कारण दुःखित भी न हूजिये। हे महाराज! कृपा कर के मुझे छुट्टी दो, अपने कुटुम्ब और प्रजा से विदा होने की आज्ञा दो।"

राजा की आंखों में आंसू आगये, और भरे हुए गले से उत्तर दिया, "बेटा तुम्हारे प्रयोजन के सिद्ध करने के लिये कहो मैं क्या कर सकता हूं?" सिद्धार्थ ने नम्रता पूर्वक कहा "मुझे चार वस्तुओं की इच्छा है जिन्हें मैं आप से मांगता हूं, और आशा है कि आप स्वीकार करेंगे। यदि आप इन्हें मुझे दे सकें, तो मुझे सदा अपने घर में देखोगे, और मैं कभी आप से अलग न होऊंगा। महाराज इन बातोंको मुझे दीजिये, कि बुढ़ापा मुझे कभी न दबोचे, मैं सदा जवान और स्फूर्त्तिमय तेजस्वी रहूं, रोग का आक्रमण मेरे ऊपर न हो, और मेरा जीवन न तो कभी अंत होवे, और न मुर्झा कर फीका पड़े।"

इन बातों को सुन कर राजा को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कठिनाई से कलेजा थाम कर कहा "प्यारे बेटा, तुम जो कुछ चाहते हो वह मिल नहीं सकता, मैं असमर्थ हूं। यहां तक कि ऋषि लोग भी इन से छुटकारा नहीं पा सकते। बुढ़ापा, बीमारी, ह्रास और मृत्यु सब के भाग्य में साधारणतः एक से हैं।"

उस विचारशील नवयुवा ने फिर कहा "यदि मैं वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु और क्षीणता से नहीं बच सकता और यदि महाराज, आप मुझे उपरोक्त बातें नहीं दे सकते तो कृपा करके कम से कम एक वस्तु, जो कम महत्व की नहीं है, तो देही दीजिये कि मैं मरने के बाद आवागमन के पचड़ों से उद्धार पा जाऊं"।

अब राजा ने समझ लिया कि ऐसे दृढ़ विचार का विरोध करना व्यर्थ प्रयत्न है, प्रातः ही उन्होंने सम्पूर्ण शाक्यों को बुला कर दरबार किया और वह शोकप्रद समाचार सुनाया। उन लोगों ने राजकुमार के भागने का बलात् रोकना निश्चित किया। उन लोगों ने स्वयं महल के फाटकों पर पहरा देने का भार अपने ऊपर लिया। युवा पुरुष पहरे वालों का काम करने लगे। और जो वृद्ध थे उन्होंने यह सूचना नगर में फैला दी कि सब लोग आने वाले समय के लिये तय्यार हो जावें। राजा शुद्धोदन स्वयं ५०० चुने हुए शाक्य क्षत्रियों के साथ महल के सदर फाटक पर जाकर डट गये। राजा के तीन भाई, युवा सिद्धार्थ के चाचे, नगर के अन्य फाटकों पर जा कर अड़ गये। और शाक्य लोगों का एक सरदार नगर के केन्द्र में जाकर जम गया, और देखने लगा, कि राजाज्ञा नियम

और पाबन्दी के साथ बर्ती जाती है या नहीं। महल के भीतर भी सिद्धार्थ की माता की बहिन प्रजापति गौतमी ने स्त्रियों का कड़ा पहरा लगाया और स्वयं उन का निरीक्षण करने लगी और नीचे का वचन कह कह कर सब को पहरे के लिये उत्साहित करने लगी।

"राजमहल और देश छोड़ कर यदि कुमार सन्तों की तरह निकल कर चला गया तो महल भर दुःखसागर में डूब जावेगा, और यह राजघराना, जो इतना पुराना है, बुरी तरह से अंत हो जावेगा।"

ये सब प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए, एक रात जब देर तक पहरा देने के सबब सब प्रहरी नींद की चपेट में आगये तो युवक राजकुमार ने अपने रथवान चाण्डक को अपना घोड़ा कण्ठक सजने को कहा, और नगर से सब की आंख बचा कर निकल भागने में सफलीभूत हुए। स्वामिभक्त अनुचर चांडक ने कुमार की आज्ञा पालन करने के पहले अश्रूपूर्ण नेत्रों से बहुत समझाया और कहा, "कुमार, इस खिले हुए गौरवपूर्ण यौवन को कष्टपूर्ण विरक्त जीवन में नष्ट करने को क्यों उतारू हुए हो? ये विशाल सुन्दर महल सुख, और आनन्द, विलासके सदन हैं, इन्हें मत त्यागो।" परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ सिद्धार्थ ने अपने प्यारे रथवान की एक न सुनी, किन्तु उसे यह उत्तर दिया:—

"हे चाण्डक, मैं अच्छी तरह जानता हूं। सांसारिक इच्छाएँ सब गुणों की मिट्टी पलीद करदेती हैं; मैं इन्हें खूब जानता हूं, अब मुझे इन से अधिक सुख नहीं मिल सकता; ऋषि लोग इन्हें सांप के फन की तरह त्याग देते हैं, और अपवित्र बर्तन की तरह सदा के लिये

इन से हाथ धो बैठते हैं। मेरे ऊपर यकायक बज्रपात हो जावे सो मुझे पसन्द है, सैकड़ों बाण यकायक आकर शरीर भेद दें सो पसन्द है, जलते हुए लाल भाले मेरे ऊपर गिरें सो पसन्द है, जलते हुए पर्वत से अग्निमय चट्टानें अभी आकर मुझे चूर चूर करदें सो भी पसन्द है, परन्तु फिर से इस पृथ्वी पर जन्म लेना स्वीकार नहीं, फिर मैं कैसे फिर कर गृहस्थ आश्रम की इच्छाओं और चिन्ताओं में जाकर फँस जाऊं ?"

आधी रात थी जिस समय सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु छोड़ा। सिद्धार्थ पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे। इस समय भी इसी का उदय था। सब प्यारी प्यारी वस्तुओं को त्यागने के समय उस नवयुवा का हृदय एक पल के लिये कुछ मन्द हुआ और फिर अपने कपिलवस्तु की तरफ़ एक दृष्टि डाल कर धीमे स्वर से अपने आप बोले:—

"मैं तब तक कपिल नगर को नहीं लौटूंगा जब तक जन्म मरण से बचने की औषधि न ढूंढ़ लूंगा; मैं तब तक फिर कर न आऊंगा जब तक उस उच्चस्थान और पवित्र ज्ञान को न पा जाऊंगा जो अवस्था और मृत्यु से परे है। जब मैं लौटूंगा तो कपिल नगर भी नींद में मग्न न रह कर, जाग्रतावस्था को प्राप्त होगा।" और सचमुच १२ सालतक न तो उन्होंने अपने पिता को देखा और न कपिलवस्तु को। जब आये तब नये धर्म में सब को पलट दिया।

सिद्धार्थ रात भर घोड़े पर चढ़े चले गये; शाक्य और कांड्य लोगों के देश पीछे छोड़ते हुए और मल्ल लोगों के प्रदेशको त्यागते हुए वे मैनेय नगर से होते हुए आगे निकल

गये। सूर्य निकलने तक वह १८ कोस निकल आये थे। यहां पर वह घोड़े से कूद पड़े, लगाम चाण्डक के हाथ में देकर, सब आभूषण और रत्न उतार उसके हाथ में दे, उसे बिदा किया।

ललित विस्तर ग्रन्थ, जिस से ये सब बातें ली गई हैं, कहता है कि जहां सिद्धार्थ ने चाण्डक को बिदा किया वहां एक चैत्य—एक प्रकार का पवित्र स्तूप—खड़ा किया गया था और वह ग्रन्थकार के समय तक चाण्डक निवर्त्तन के नाम से प्रसिद्ध था"। ह्यूनसैङ्ग ने भी इस स्तूप को देखा था। वह कहता है, "यह स्तूप सम्राट् अशोक ने एक जंगल की नुक्कड़ पर बनवाया था, जहां से सिद्धार्थ अवश्य निकले होंगे। यह कुशीनगर को जाने वाली राह पर बना था। इस के ५१ साल बाद इन्होंने कुशीनगर में निर्वाण पाया था, इस से सिद्ध होता है कि घर से भागने के समय सिद्धार्थ की आयु २९ वर्ष की थी, क्योंकि वे ८० वर्ष की अवस्था में निर्वाण पद को प्राप्त हुए थे।

जब राजकुमार अकेले रह गये तो इन्होंने जाति और पद के शेष चिन्हों से भी छुटकारा पाया। पहले उन्होंने अपने लम्बे लम्बे बाल तलवार की धार से काट कर हवा में छितरा दिये, इस के बाद उन्हों ने अपने रेशम के राजसी वस्त्रों को एक शिकारी के पुराने मृगचर्म के वस्त्रों से बदल लिये। पहले तो शिकारी कुछ हिचकिचाया पर जब उसने देखा, कि किसी बड़े आदमी से व्यर्थ ही विरोध करना पड़ेगा तब उस ने प्रसन्नता से अपने चर्म-चीथड़े उतार कर दे दिये।

जैसे ही राजा शुद्धोदन को सिद्धार्थ का भागना मालूम हुआ, उन्होंने बहुतेरे दूत उन की खोज में भेजे परन्तु वे सब अकृतकार्य्य हुए। अपनी ढूंढ़ खोज में उन लोगों को वह शिकारी राजसी ठाठ में मिला, उसे वे लोग अवश्य हैरान और तङ्ग करते, किन्तु चाण्डक साथ था इस से वह बचगया, क्योंकि उसने यथार्थ बात बतला कर उन लोगों की कोपाग्नि शान्त कर दी। उस ने राजकुमार के निकल भागने का सब कच्चा पक्का हाल कह सुनाया। राजा की आज्ञा के अनुसार वे लोग फिर कुमार की खोज में चल पड़ने वाले थे, परन्तु चाण्डक ने उन लोगों को समझा बुझा कर रोका। उसने कहा "तुम लोग कुमार को लौटा लाने में सफलमनोरथ न होगे। वे अपने विचार, पुरुषार्थ, और निश्चय में अत्यन्त दृढ़ हैं। कुमार ने जाते समय कहा था, "कपिलवस्तु को मैं उस समय तक नहीं लौट सकता जब तक मैं पूर्ण ज्ञान न प्राप्त कर लूंगा और बुद्ध न हो जाऊंगा। वे अपने विचार को पलटने वाले पुरुष नहीं हैं। जैसा उन्होंने कहा है वैसा ही होगा, वे अपने विचार बदलने वाले नहीं हैं।" चाण्डक ने लौट कर राजा को सब समाचार दिये। उस ने प्रजापति गौतमी को सिद्धार्थ के सब रत्नजटित आभूषण सौंपे, परन्तु उसने वे दुःखदायक सुधि दिलाने वाले आभूषण अपने पास न रख कर एक सरोवर में डाल दिये। वह तब से आभूषण-पुष्कर कहलाने लगा। सिद्धार्थ की नवयौवना पत्नी गोपा अपने पति के दृढ़ निश्चय को खूब जानती थी। वह इस दुःखदायक वियोग के लिये पहले ही से बहुत कुछ तय्यार

थी, परन्तु तो भी वह उस दिन से बहुत उदास रहने लगी। चाण्डक ने उस से गौरवपूर्ण भविष्य की बातें बहुत कुछ कहीं, पर स्त्री के जलते हुए हृदय को शान्त करना कठिन है। वह प्रायः दुःखित ही रहा करती थी।

लगातार बहुत से ब्राह्मणों का आतिथ्य स्वीकार करते हुए, युवा राजकुमार अन्त में वैशाली के विशाल नगर में पहुंचे। इस समय वैदिक धर्म का प्रचण्ड दीपक टिमटिमा रहा था। इस अंधकार के समय में बहुत से अंधेर-मय सिद्धान्त प्रचलित हो गये थे। जाति का झगड़ा असली प्रयोजन से हटता हटता मूर्खता की अन्तिम श्रेणी को पहुंच गया था। नीच जाति के लोग बिलकुल अंधकार में थे, धर्म की केवल थोड़ी सी ज्योति विद्यमान थी। जैसा कि स्वाभाविक है, ब्राह्मणों की क्रमशः बढ़ती हुई प्रधानता लोगों पर असह्य भार हो रही थी। धर्म केवल नाम मात्र को रह गया था। वाममार्ग की प्रबलता थी। अधर्मसंगत बातों का बड़ा प्रचार हो रहा था। धर्म के नाम से लोगों को पाप में अधिक डूबते हुए देख कर अधर्मयुक्त सिद्धान्तों को उखाड़ने के लिये सिद्धार्थ ने दृढ़ता के साथ तय्यारी कर दी, पर शोक है कि भ्रान्ति पूर्ण कपिल ऋषि का मार्ग अनुवर्त्तन करने वाला ज्ञानी सिद्धार्थ भी एक पग फिसल गया और फिर ऐसा गिरा कि ईश्वर को ही भूलगया। इन का मत था कि अपने कर्म्म का फल हर दशा में मिलता है, अपने कर्म्मों के फल भोगने से कोई बच नहीं सकता इसलिये कर्म्म को प्रधानता दी। वैशाली में पहुंचने पर उन्होंने बड़े बड़े ब्राह्मण विद्वानों को ढूंढ़ कर

साक्षात् किया और उन से शास्त्रों का पढ़ना आरम्भ किया, क्योंकि विना ऐसा किये वे उन लोगों के सिद्धन्तों का खण्डन भी नहीं कर सकते थे। अन्त में उन्हों ने आचार्य अलारकालाम्* से भेट की। ये बड़े बड़े विद्वान् अध्यापकों और आचार्य्योंमें श्रेष्ठतम समझे जाते थे। इन के पास बहुत से श्रोताओं के सिवाय ३०० शिष्य भी थे। सिद्धार्थ बहुत ही सुन्दर रूपवान् थे। जब वे उपरोक्त आचार्य्यके आश्रममें गये तो लोग उनकी सुदरताकी मन ही मन में बड़ी सराहना करने लगे; विशेषतः आचार्य्य ने उनको बहुत ही अधिक सराहा। इसके बाद ही सिद्धार्थ की विद्वत्तासे वे ऐसे प्रसन्न हुए, कि वे उनकी विद्याकी सुन्दरता से भी बहुत अधिक प्रशंसा करने लगे। सिद्धार्थ बहुत शीघ्र इतने योग्य होगये, कि आचार्य्य ने उन्हें अपनी बराबरी का शिक्षक बनने को कहा, परन्तु सिद्धार्थने नम्रता पूर्वक अस्वीकार कर दिया। इस नवीन ऋषि ने अपने मन में सोचाः—

"आचार्य्य का यह सिद्धान्त यथार्थ स्वतन्त्रता देने वाला नहीं है। इसका अभ्यास मनुष्य जाति को दुःख से बिलकुल नहीं छुड़ा सकता। इस सिद्धान्त को यथेष्ट बनाने के लिये प्रयत्न करूंगा। केवल भूखों मरने और इन्द्रियों के जीतने से क्या होगा? इस से भी कुछ अधिक —पूरी स्वाधीनता—पाने के लिये मुझे कुछ और खोज करनी पड़ेगी।

सिद्धार्थ कुछ समय तक वैशाली में रहे, इस नगर को

---

* इस नाम में कुछ गड़बड़ मालूम होती है। अंगरेज़ी में "Alarkalam" लिखा है।

छोड़ कर वह मगध देश में आये, और उसकी राजधानी राजगृहमें पहुंचे। उनके आनेसे पहले ही उनकी सुन्दरता और विद्या की ख्याति यहां आपहुंची थी। ऐसी सुन्दरता को भिक्षु के दुःखपूर्ण लिबास में देख कर लोग अचम्भे में आगये और उन्हें चारों तरफ से घेरने लगे। उस दिन गलियों में इतनी भीड़ हुई, कि नीचों जाति के लोगों ने मद्यपान करना छोड़ दिया, बाज़ार बन्द होगये और क्रय विक्रय बंद होगया, क्योंकि सब कोई उस श्रेष्ठ भिक्षु त्यागी महात्मा को निहारने की लालसा रखते थे। स्वयं राजा बिम्बसार उन्हें देख कर उनके आतंक में आगया था। जब वे उस के महल की खिड़की के नीचे से उत्साही और जोशीले लोगों में होकर जारहे थे तो उस समय राजा ने भी स्वागतसूचक शब्द कहे। सिद्धार्थ का निवास स्थान पाण्डव-गिरि की ढाल पर था। बिम्बसार ने उसे अपनी आंखों से वहां तक पहुंचाया और आदर प्रदर्शित करने के लिये, बहुत से सरदारों के साथ उन के पास स्वयं गये। बिम्बसार सिद्धार्थ की ही आयु का था। सिद्धार्थ जिस विचित्र दशा में थे उसका बिम्बसार के हृदय पर बड़ा असर हुआ, उन के मधुर भाषण और शान्त स्वभाव ने उसे मोह लिया। उनकी धर्म्मशीलता और सद्गुणों ने बिम्बसार को लुभा लिया, और उसी समय से उसने सिद्धार्थ के सिद्धान्तों का संरक्षकत्व स्वीकार किया और मरण पर्य्यन्त उन की रक्षा करता रहा। बिम्बसार ने इस संसारत्यागी विरागी को बहुत ही चित्ताकर्षक जगहों के देने का लालच दिखा कर फिर संसार में खींचने का उद्योग किया, परन्तु निस्पृह महात्मा

अपने दृढ़ निश्चय से किञ्चित् भी चलायमान न हुए। कुछ दिनों राजगृह में रहने के बाद वह नैरञ्जना नदी—आधुनिक फल्गू—के किनारे सांसारिक झगड़ों और झंझटों से आंख हटा कर आ गये और विरक्तों की तरह रहने लगे।

लङ्का में बड़े भारी महत्व की एक ऐतिहासिक पुस्तक महावंश नाम की है। यह पुस्तक विक्रम की पांचवीं शताब्दी में लिखी गई थी। इस का लेखक महानाम है। इस महानाम ने अत्यन्त प्राचीन बौद्ध पत्रों और चिट्ठों से इकट्ठा करके लिखा था। इस में लिखा है कि बिम्बसार बौद्ध हो गया—या ग्रन्थकार के शब्दों में विजेता के दल में मिल गया। उस में यह भी लिखा है, कि वह जब ३१ वर्ष यानी अपने राज्य काल के १६ वर्ष में था तब बौद्ध हुआ था। वह १५ साल की आयु में राजसिंहासन पर बैठा था और उसने ५२ वर्ष तक राज्य किया था। बिम्बसार का पिता राजा शुद्धोदन—सिद्धार्थ का पिता—का परम मित्र था, उन दोनों में अत्यन्त प्रीति थी। इसी कारण सिद्धार्थ और बिम्बसार में भी घनिष्ट मित्रता हो गई थी। बिम्बसार को उस के लड़के अजातशत्रु ने मार डाला था; क्योंकि वह पहले बुद्ध के अहिंसा और दया के विचारों से उससे सहमत नहीं था, बुद्ध को भी उसने ख़ूब सताया और तङ्ग किया था, परन्तु फिर वह भी उस का अनुवर्त्ती हो गया। कैसे हो गया सो आगे चल कर कहेंगे। श्रमण गौतम को बहुत से राजाओं और मनुष्यों का आश्रय था। यद्यपि उन लोगों ने श्रमण के नये सिद्धान्तों का बड़े जोश के साथ स्वागत किया था, तथापि उन्हें अपने ऊपर अभी पूरा भरोसा

न था, इस से उन्होंने अपनी योग्यता की एक पक्की और अन्तिम परीक्षा लेनी चाही।

हमने पहले एक ब्राह्मण आचार्य का वर्णन किया है उस से भी बढ़ कर राजगृह में एक विद्वान् था। राम नामक एक विद्वान् था उसका ही पुत्र यह आचार्य उद्रक नाम का था और सचमुच यह एक असाधारण विद्वान् था। उसकी बराबरी आस पास के बहुत कम पण्डित कर सकते थे, और बढ़ कर तो कदाचित उन में कोई नहीं था। सिद्धार्थ उन के पास गये और अपना शिष्य बना लेने की उन से प्रार्थना की। कुछ शास्त्रार्थ के बाद उद्रक ने सिद्धार्थ को अपनी बराबरी का पद देकर उन्हें अपने आश्रम में एक अध्यापक नियत किया, और कहा हम दोनों मिल कर अपने सिद्धान्त लोगों को सिखावेंगे। उक्त अध्यापक के ७०० शिष्य थे।

जिस तरह वैशाली में हुआ था, उसी तरह यहां भी राजकुमार की विद्या की श्रेष्ठता झलकने लगी, और सिद्धार्थ को लाचार होकर उन लोगों से यह कह कर जुदा होना पड़ा "मित्र, यह मार्ग मनुष्यों का उद्धार नहीं कर सकता, इससे कामेन्द्रियां नहीं जीती जा सकतीं और न इस से मनुष्य आवागमन के दुःखों से बच सकता है, न यह पूर्ण ज्ञान और शान्ति की ओर जाता है, और न इस से श्रमण अवस्था प्राप्त हो सकती है और न निर्वाण।" इसके बाद वे उद्रक, और उनके समस्त शिष्यों के समीप से चले गये।

उद्रक के पांच शिष्य श्रमण गौतम की मोहिनी वक्तृता, चरित्र और गुणों की पवित्रता से लुभाकर उन

के साथ चल दिये । उन्हों ने अपने पहले गुरु का साथ छोड़ दिया और सिद्धार्थ के शिष्य हो गये । वे सब लोग उच्चजाति के थे । उन सबों के साथ ये नवीन आचार्य्य पहले गया पर्वत की ओर चले गये, फिर नैरञ्जना नदी के किनारे पर उरुवेल नामक गांव के निकट आये। वहां इन्होंने अपने सिद्धान्तों को फैलाने के पहले उन पर विचार किया । उस समय के सिद्धान्तों और ब्राह्मणों की विद्या से इनका जी फिरगया । उन में जो कुछ त्रुटि थी, ये समझ गये, और इस तरह इन्होंने उन लोगों से अपने को योग्यता में अधिक समझा । इस पर भी इन्हें अपनी निर्बलता के ही दूर करने के लिये अधिक बल प्राप्त करना था, और यद्यपि ये उस समय के संन्यास की कड़ाइयों को बुरा समझते थे तथापि इन्होंने तप और आत्मदमन कई साल तक करते रहने का दृढ़ निश्चय कर लिया । इस के दो कारण थे:— एक तो यह कि, इन्हें ब्राह्मणों ही के सदृश लोकप्रियता प्राप्त करनी थी, और दूसरे इन्हें इन्द्रिय दमन भी पूरा करना था ।

इस तप के लिये उरुवेल गांव बौद्ध इतिहासों में प्रसिद्ध है । सिद्धार्थ ने यहां ६ वर्ष तक बराबर उग्र तप किया था । उन्हों ने अपनी इन्द्रियों के अत्यन्त भयानक आक्रमणों का खूब प्रतिहार किया ।

छः वर्ष के अन्त में अत्यन्त इन्द्रिय-दमन, उपवास, कष्ट सहन और आत्मसंयम के बाद सिद्धार्थ को मालूम हुआ कि इस तरह पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, और इस कारण उन्होंने यह अत्यन्त दुःखदायी संयम शेष करने का नियम कर लिया । अब वे नियमानुसार भोजन

करने लगे । यह भोजन एक ग्रामीण बालिका सुजाता नाम की प्रति दिन लाया करती थी । थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपनी शारीरिक शक्ति और सुन्दरता, जिन्हें उन्होंने अत्यन्त कठिन संयमों से बिगाड़ दिया था, फिर प्राप्त कर लीं। उन के पांचों शिष्यों को, जो अब तक उन के बड़े श्रद्धालु भक्त थे और उन्हीं को देखा देखी घोर तप करते थे, अब उनकी इस निर्बलता पर बड़ी घृणा हुई । उन्हें छोड़ कर काशी की ओर ऋषिपाटन नामक स्थान में चले गये । यहां पर अन्त में इन लोगों का गौतम ऋषि से मिलाप हो गया था ।

सिद्धार्थ ने अब तपस्या और उपवास का त्याग कर दिया । अकेले उरुवेल के निकट आश्रम बना कर, मनन करते हुए रहने लगे । इस में कोई संदेह नहीं, कि इसी जगह सिद्धार्थ ने अपने नवीन धर्म्म के सिद्धान्त निश्चित किये, और अपने अनुयायियों के लिये नियम बनाये । जो भेष और नियम वे अपने अनुयायियों के लिये बनाना चाहते थे उन का वे स्वयं उदाहरण बने ; क्योंकि ऐसा किये बिना उनके महाभक्त शिष्य भी छिद्रान्वेषण किये बिना न रहते, और नियमों का बर्ता जाना भी कठिन हो जाता । जो धर्म-वस्त्र उन्हों ने ६ साल पहले एक शिकारी से बदले थे वे बिल्कुल चिथड़े होगये थे । उन्हीं वस्त्रों से वे नगर नगर घूमते थे, और ऋतुओं का कठोर प्रभाव भी उन्हीं से सहा था, तात्पर्य यह, कि उन्हीं से उन्हों ने अभी तक इतने कड़े दिन बिताये थे । अब ये चिथड़े खुले मैदान के काम के न रहे, इस कारण नये वस्त्रों की आवश्यकता हुई । सुजाता उरुवेल के सरदार

की लड़की थी। इसका कुछ वर्णन पहले भी आचुका है। यह सिद्धार्थ में बड़ी भक्ति रखती थी। यह दस स्त्रियों के साथ आकर सिद्धार्थ को भोजन देजाया करती थी। इसकी एक दासी थी उसका नाम था राधा। यह हाल ही में मर गई थी। इस की अन्त्येष्टि क्रिया का एक सड़ा पुराना वस्त्र सिद्धार्थ को मिल गया। उसे सींकर उसने एक कोपीन तय्यार किया। इस तरह वे बौद्ध साधुओं के लिये उदाहरण रूप हुए। जिस जगह उन्होंने वह वस्त्र तय्यार किया था उसे पानसुकूल—सीवन कहते थे। उनके अनुयायी साधुओं में यह नियम प्रचलित होगया, कि जब कभी वस्त्र की अत्यन्त आवश्यकता पड़े तो फेंके हुए चि-थड़ों और सड़े कपड़ों से वे अपने ही हाथों तय्यार किये जावें। इससे किसी बौद्ध साधु को यह कहने की जगह न थी, कि वस्त्र खराब हैं, क्योंकि बौद्ध धर्म्म के स्थापक, शाक्य वंश के एक मात्र प्रतिनिधि, एक बड़े राजा के उत्तराधिकारी, और स्वयं महापण्डित सिद्धार्थ ने जब वैसा किया तब दूसरे के लिये ऐसा करने में क्या आपत्ति?

इन दुःखदायी तपों का अन्त समय निकट आगया। सिद्धार्थ को अब केवल एक पग आगे बढ़ना था। वे अपने भावी शत्रुओं को जानते थे, और अपने आप को भी पहचानते थे; वे उन लोगों की निर्बलता को जानते थे और अपने बल को भी समझते थे परन्तु उन की दूरदर्शिता ने उन्हें अभी ठहरा रक्खा था। वे अपने आप विचार करने लगे, कि मैं अभी मनुष्य जाति के मोक्ष का द्वार बतलाने योग्य हो गया हूं या नहीं। मुझमें संसार में सत्य प्रगट करने की पूरी शक्ति आगई है या

नहीं। उन्हों ने एक बार अपने आप कहा, "जो कुछ मैं ने अभी तक किया है, या प्राप्त किया है, उस से मैं मानुषिक-धर्म से आगे बढ़ गया हूं? अभी तक मैं उस पद पर नहीं पहुंचा हूं जहां उच्च ज्ञान को स्पष्टतया समझा सकूं। मैं अभी तक ज्ञान के सच्चे रास्ते पर नहीं आया हूं, और न उस मार्ग पर पहुंचा हूं जिस से बुढ़ापा, रोग और मृत्यु की सच्ची औषधि मिल जाती है।" कभी कभी उन्हें अपने बचपन की सुधि आती थी, उन्हों ने अपने पिता के उपवन में जम्बू वृक्षके नीचे जो जो स्वप्न देखे थे वे सब धीरे धीरे उन के हृदय पर उतरने लगे और उन्होंने अपने आप प्रश्न किया, "क्या वे स्वप्न अवस्था और विचारों की प्रौढ़ता के साथ सच्चे होंगे? क्या मेरे बचपन के विचारों ने जो मुझे विचित्र विचित्र वचन दिये थे वे पूरे होंगे? क्या मैं मनुष्य जाति का मोक्षदाता होऊंगा?" ऐसी ऐसी बातें वे पूरे एक सप्ताह तक सोचते रहे। अंत में उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपने प्रश्नों का हां में उत्तर दिया।

"हां, अब मैं ने महत् होने का सच्चा मार्ग ढूंढ निकाला है। यह मार्ग आत्मबलिदान का है और यह ऐसा है कि कभी नहीं चूकेगा, कभी विफल न होगा और कभी निरुत्साह न करेगा। यह मार्ग पवित्र पुण्य का है; इस मार्ग में कोई कांटा, कङ्कड़ नहीं—इस में द्वेष, ईर्ष्या, अज्ञान और तृष्णा दूर रहेंगीं; यह वह मार्ग है जिस से स्वाधीनता मिलती है, और जिस से पाप जड़ मूल से उखड़ जाता है। यह वह मार्ग है जिस से आवागमन का डर न रहेगा, यह वह मार्ग है जिस से विश्व,

विद्या अधिकृत होती है, यह अनुभव और न्याय का मार्ग है, यह बुढ़ापे और मृत्यु को कोमल कर डालता है, यह वह शान्त मार्ग है जिस में पाप का भय नहीं है और निर्वाण की ओर सीधा चला गया है।" तात्पर्य यह कि सिद्धार्थ इस समय से अपने को बुद्ध समझने लगे।

जिस जगह सिद्धार्थ बुद्ध हुए वह कथाओं में उतनी ही प्रसिद्ध है जितनी कपिलवस्तु नगरी। ये चार स्थान एक ही से प्रसिद्ध हैं, कपिल वस्तु, उरुवेल-जहां ६ साल घोर तप किया, वह स्थान जहां उन्होंने बुद्धत्व पाया और कुशीनगर—जहां उनका निर्वाण हुआ। जिस स्थान पर सिद्धार्थ बुद्ध हुए, उसे बोधिमण्ड कहते हैं इस का अर्थ है सम्पूर्ण बुद्धि का स्थान। इन बातों को बौद्धों की अगणित पीढ़ियों ने रक्षित रक्खा है।

गौतम ऋषि बोधिमण्ड को जा रहे थे कि नैरञ्जना के किनारे उन्हों ने सड़क के दाईं ओर एक घास बेचने वाले को, जिस का नाम स्वस्ति था, खस खोदते हुए देखा। बोधिसत्व-भावी बुद्ध—उस की तरफ फिरे और थोड़ा सा खस मांगा। पश्चात् खस लेकर उस की जड़ें ऊपर की तरफ और नोकें नीचे की तरफ कर चटाई का आकार बनाया, और पूर्व दिशा की ओर मुंह कर के बैठ गये। जिस पेड़ के नीचे वे बैठे थे उसका नाम बोधिद्रुम पड़ा।

आसन लगाने पर उन्होंने अपने आप कहा, "जब तक मैं पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर लूंगा तब तक यहां से न उठूंगा, चाहे खाल, हड्डी, और मांस क्यों न नष्ट हो जावें।"

विना हिले डुले वे २४ घंटे आसन पर बैठे रहे। जिस समय धीरे धीरे प्रातःकाल हो रहा था, जिस समय नींद सब को आदबोचती है उसी समय गौतम मुनिने पूर्ण बुद्धत्व और ज्ञान प्राप्त किया।

उस समय वे यकायक चिल्ला उठे, "हां! निःसन्देह अब इस तरह मैं मनुष्य जाति के कष्टों को दूर करूंगा। पृथ्वी पर हाथ पटक कर—आवेश में आ उन्होंने कहा, "पृथ्वी मेरी साक्षी हो, यह सम्पूर्ण जीवों का निवास स्थान है, इस में चल अचल सब विद्यमान हैं, यह पक्षपातरहित है, यह साक्षी देगी, कि मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं।"

इस समय बुद्ध छत्तीस वर्ष के थे। जिस पेड़ के नीचे बोधिमण्ड में बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया था, वह पीपल का वृक्ष था। इस पीपल के पेड़ को बौद्ध लोग बोधिद्रुम कहते थे। सम्बत ६८९ विक्रमी में बुद्ध की मृत्यु के १२०० साल बाद चीनी यात्री ह्यूनसैङ्ग ने यह वृक्ष देखा था। ललितविस्तर में लिखा है, कि यह मगध की राजधानी राजगृह से ४५ मील की दूरी पर था, और नैरंजना से कुछ दूर नहीं था। इस पेड़ के चारों तरफ पक्की पक्की बड़ी दीवारें थीं, जो पूर्व पश्चिम की ओर बढ़ती चली गईं थीं, और उत्तर दक्षिण की ओर सरासर ओछी थीं। सदर फाटक पूर्व की ओर था। इस के सामने नैरंजना नदी थी। दक्षिणी फाटक के सामने एक बड़ा पोखरा था। इस में कोई सन्देह नहीं यह वही होगा जिस में बुद्ध ने वह सड़ा गला कफन वस्त्र धो कर अपने पहरने के लिये तय्यार किया था।

पश्चिम की ओर बहुत से ढालू पहाड़ थे, और उत्तर की ओर यह स्थान एक मठ से मिला हुआ था । इस पेड़ की पेड़ी सफ़ेदी लिये हुए पीली थी, इस की पत्तियां चिकनी, चमकदार और हरी थीं, इस पेड़ के नीचे हर साल बुद्ध-निर्वाण-दिवसोत्सव पर नृपतिगण, मन्त्री लोग और न्यायाधीश जुड़ा करते थे। इस पेड़ को इस दिन दूध से सींचते थे, दीपक जलाते थे, पुष्प वर्षा करते थे, और गिरी हुई पत्तियां बीन कर चल देते थे।

बोधिद्रुम के पास ह्यूनसैङ्ग ने बुद्ध की एक मूर्त्ति देखी उसको उसने साष्टांग प्रणाम किया। कहा जाता था कि इसको मैत्रेय ने बनवाया है। वह बुद्ध का अत्यन्त भक्त शिष्य था। उस मूर्त्ति और वृक्ष के चारों ओर एक छोटी सी जगह में, बहुत से धर्म सम्बन्धी स्तूप खड़े थे। ये किसी न किसी पवित्र यादगार में बनवाये गये थे।

भक्त यात्री बतलाता है, कि उसे इन मूर्त्तियों के एक एक कर पूजन करने में ८–९ दिन लगे थे। वहां हर तरह के रूप और आकार के विहार, स्तूप और मठ थे। चीनी भक्त को वज्रासनम् नामक पहाड़ी मुख्य कर दिखाई गई थी। यह वह पहाड़ी थी जिस पर बुद्धदेव बैठा करते थे।

यद्यपि इस समय घटनास्थल पर पहले के वृक्षों का कोई चिन्ह नहीं, परन्तु भूमि नहीं बदली जा सकी है। खंडहरों के चिन्ह अब भी दिखाई पड़ते हैं। ललित विस्तर, फाहियान और ह्यूनसैङ्ग के प्रामाणिक लेखों की सहायता से बोधिमण्ड का पता लगा लिया गया है, और प्रत्येक पूर्व लिखित वस्तु का ठीक ठीक स्थान

मालूम कर लिया गया है।

बोधिमण्ड के पीपल के वृक्ष के नीचे बुद्ध का वैराग्य कुछ ऐसा गुप्त नहीं था कि लोग उन से भेंट करने में वंचित रह जाते। सुजाता और उस की सखियों के अतिरिक्त, जो उसे भोजन इत्यादि से सहायता देती चली आई थीं, बुद्ध ने दो मनुष्यों को और भी अपनी दीक्षा दी। ये दोनों सहोदर भाई थे। व्यापार किया करते थे। दक्षिण की ओर से माल लाद कर उत्तर की ओर जा रहे थे। बीच में बोधिमण्ड पड़ता था। उनके जो साथी थे, वे भी संख्या में बहुत थे, क्योंकि उनके साथ कई सौ छकड़े लदे चले जा रहे थे। उनकी कुछ गाड़ियां कीचड़ में बेतरह फँस गईं। दोनों भाई जिनका नाम त्रिपुष और भल्लिक था, महात्मा बुद्ध के पास सहायता के लिये आये। बुद्ध के कथनानुसार उन्होंने यत्न किया और कृतकार्य्य हुए। वे लोग उन के सद्गुणों और अलौकिक ज्ञान से मुग्ध हो गये। ललितविस्तर कहता है, "वे दोनों भाई और उनके सम्पूर्ण साथी बुद्ध के सिद्धान्तों के अनुयायी हुए।"

सफलता के इन पहले शुभ लक्षणों के होते हुए भी, बुद्ध अब भी हिचकिचाते थे। अब आगे से उन्हें अधिक विश्वास हो गया, कि सत्य पूर्णतया मेरे आधीन हो गया है। परन्तु सन्देह था कि मनुष्य मेरे नूतन मार्ग का अवलम्बन करने को तय्यार होंगे या नहीं? मैं मनुष्यों के लिये प्रकाश बाहर लाया हूं परन्तु क्या मनुष्य उसके लिये अपने नेत्र खोलना स्वीकार करेंगे? क्या वे उस मार्ग का अनुसरण करेंगे जिस के लिये उन से कहा जावेगा? अब इस तरह के विचार बुद्ध को सताने लगे। वे फिर विरक्त

होकर एकान्त सेवन करने लगे। ध्यान करते करते उन्होंने एक बार हृदय में सोचा :—

जो सिद्धान्त मैं ने निकाला है गूढ़, गम्भीर और सूक्ष्म है और मनन करने में कठिन है; इसे अलग अलग कर के समझने में बुद्धि हार खाजाती है, और यह तर्क शास्त्र की सम्पूर्ण शक्तियों की पहुंच के बाहर है; इसे केवल ज्ञानी और बुद्धिमान् पा सकते हैं; इस में संसार की सम्पूर्ण बुद्धि का समावेश है। इस से निर्वाण सुगम और सहज हो जाता है। परन्तु यदि मैं, जो सत्यज्ञानसम्पन्न बुद्ध हूं, इस सिद्धान्त को लोगों को सिखाऊं तो वे इसे समझेंगे नहीं, और मुझे उलटे उनके अनुचित कटाक्ष झेलने पड़ेंगे और गालियां सहनी पड़ेंगीं। नहीं, मैं इस तरह करुणा के वशीभूत न होऊंगा।

बुद्ध तीन बार इस निर्बलता से दबजाने वाले थे, और कदाचित् वे अपने इस बड़े भारी पराक्रम को सदा के लिये त्याग भी देते, और अन्तिम उद्धार का सिद्धान्त अपने ही साथ ले मरे होते, परन्तु एक ऊंचे विचार ने अन्त में उन्हें इन सब अड़चनों और हिचकिचाहटों को दूर करने में दृढ़ कर दिया।

उन्होंने सोचा :—

"चाहे ऊंचे हों वा नीचे, चाहे बहुत अच्छे हों या बहुत बुरे, या विरक्त स्वभाव के हों मनुष्य तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। उन में से एक तिहाई भ्रम में भूले हुए हैं और सदा भूले रहेंगे, एक तिहाई के अधिकार में सत्य धर्म है, और शेष एक तिहाई अनिश्चय और अविश्वास के किनारे खड़े हैं। चाहे मैं सिखाऊं

-या न सिखाऊं जो लोग सन्देह के अन्धकूप में सड़ रहे हैं कदापि अधिक ज्ञान न पा सकेंगे ; चाहे मैं सिखाऊं या न सिखाऊं जो आप ज्ञानी और बुद्धिमान् हैं सदा बुद्धि-मान बने रहेंगे; परन्तु वे प्राणी जो अनिश्चय और अविश्वास में ग्रस्त हैं यदि मैं सिखाऊं तो अवश्य ज्ञान प्राप्त कर लाभ उठाऐंगे और यदि न सिखाऊंगा, तो वे नहीं सीख सकेंगे ।

जो लोग अनिश्चय के गड्ढे में पड़े हुए थे, उन के ऊपर बुद्ध को बड़ी दया आई, और उनके विचार करुणा से तो भरे थे हो उन्होंने कर्त्तव्य क्षेत्र में उतरने के लिये दृढ़ता से निश्चय कर लिया । जो लोग अनिश्चय और अविश्वास में थे उन के लिये वे अमरता का द्वार खोलने को उद्यत हुए । उन्होंने अन्तमें ४ श्रेष्ठ और सत्य सिद्धान्त ध्यानसागर से खोज निकाले । इन सबों को वे भूले हुए लोगों को बचाने के लिये प्रकाश करने को उतारू हुए ।

अपने सिद्धान्त के आधार को एक बार पक्का और निश्चय कर लेनेपर और अपने विचारोंको फैलाने के यत्न में आने वाली आपदाओं और कठिनाइयों का सामना करने का विचार दृढ़ कर लेनेपर, उन्हें यह विचार हुआ, कि मैं पहले पहले किसे अपना धार्मिक सिद्धान्त बताऊं । यह कहा जाता है कि पहले उन का विचार अपने पुराने गुरुओं को राजगृह और वैशाली में जाकर सिखाने और उपदेश देने का हुआ । कुछ दिनों पहले जब वे उन लोगों के पास गये थे तब उन्होंने उनका खूब आगत स्वागत किया था;

उन्होंने उन दोनों को शुद्ध, पवित्र, ईर्ष्यारहित और तमोगुणहीन, ज्ञान और सत्य से पूर्ण पाया था। जिस प्रकाश को उन्होंने स्वयं खोजा था, वह उन लोगों की शिक्षा दीक्षा का ही फल था। इस नवीन प्रकाश की जड़ जमाने वाले वे ही लोग थे। वाराणसी [काशी] में जा कर उपदेश देने के पूर्व उन्होंने रामात्मज उद्रक, और अलारकालम्, जिन्हें वे कृतज्ञता के साथ याद किया करते थे, को सिखाने की इच्छा की। परन्तु इसी बीच में वे दोनों परलोकवासी हो गये थे। जब बुद्ध ने सुना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्हों ने सोचा कि मैं ने इन दोनोंको बचा लिया होता, और अवश्य ही वे मेरे उपदेशों की अवहेलना न करते। अब उन का ध्यान उन पांचों शिष्यों की ओर गया जो उन के एकान्त सेवन के साथी रहे थे, और उनके तपों और कड़े व्रतों में दिल से उनकी सुधि लेते और चिन्ता रखते थे। यह सच था, कि उन लोगोंने आवेश की अधिकताके कारण उन्हें त्याग दिया था, परन्तु वे महात्मा सदृश पुरुष, जो उच्च जाति और श्रेष्ठ वंशके थे, तो भी बहुतही भले आदमी और सत्य उपदेश ग्रहण करनेको तय्यार रहते थे, वे लोग कड़े तपों और व्रतों के करने में अभ्यस्त थे। यह स्पष्ट था, कि वे लोग मोक्ष की ओर झुके हुए थे और सचमुच वे लोग उन बहुत सी रुकावटों को दूर कर चुके थे जो और लोगों की उन्नति में बाधा डालती हैं। बुद्ध जानते थे, कि वे लोग मुझे घृणा की दृष्टि से नहीं देखेंगे, इसी कारण उन्होंने उन लोगों की खोज निकालने का निश्चय कर लिया। उन्होंने बोधिमण्ड छोड़ा और उत्तर की

ओर चलते हुए गया गिरि पार किया। यह थोड़ी ही दूरी पर था। इस जगह उन्होंने कलेवा किया। मार्ग में जाते हुए रोहितवस्तु, उरुवेल, कल्प, अनाल, और सारथी में ठहरे। यहां के मुख्य गृहस्थों ने उनका आदर सन्मान किया, और आतिथ्य सत्कार का पुण्य लाभ किया। इस तरह वे वृहन्नदी गङ्गा के निकट पहुंच गये। वर्षा के कारण उस समय पानी बहुत चढ़ा हुआ था और बड़े वेग के साथ बह रहा था। बुद्ध ने एक मल्लाह से विवश हो कर पार उतारने को कहा, परन्तु उनके पास देने को एक कौड़ी भी न थी इसलिये कुछ कठिनाई के साथ पार उतरने का प्रबन्ध कर पाये। जैसे ही नरेश बिम्बसार ने इस अड़चन की बात सुनी उसने तुरन्त सब साधुओं के लिये विना किराये लिये पार उतारनेकी आज्ञा दे दी।

वे अब वाराणसी पहुंच गये, और सीधे अपने पुराने शिष्यों के पास चले। वे इस समय मृगदाव नामक वन में रहते थे। इसे ऋषिपाटन भी कहते थे। यह काशी के बिलकुल पास था, उन्होंने दूर से महात्मा बुद्ध को आते हुए देखा, जो जो बातें बुद्ध के विरुद्ध उन लेगों के हृदय में भड़भड़ा रही थीं, वे फिर लहलहा उठीं। वे सब आपस में कहने लगे हम लोग इन के साथ मिल कर कोई काम नहीं कर सकते; न तो हमें उन का आगे बढ़ कर स्वागत करना चाहिये, और न उन के आने पर अभ्युत्थान करना चाहिये, न हमें उन का धार्मिक-वस्त्र उतार कर लेना चाहिये, और न भिक्षा-पात्र छूना चाहिये, न हमें उन के लिये अर्घ तय्यार

करना चाहिये, न आसन देना चाहिये। हम अपने आसनों पर बैठे रहेंगे, वे चटाई से नीचे बैठ जावेंगे। परन्तु उनकी यह उदासीनता और असन्तोष देर तक नहीं ठहर सका। जैसे जैसे गुरु निकट आते गये तैसे तैसे उन्हें अपने आसनों पर बैठा रहना कठिन मालूम होने लगा, और किसी एक भीतरी गुप्त शिक्षक ने उन लोगों से उन के सामने खड़े होने की इच्छा प्रकट की। यह अन्तःकरण पर प्रकृति की टङ्कार थी। सचमुच शीघ्र ही बुद्ध का आतङ्क, और तेज सँभालना उन के लिये अत्यन्त कठिन हो गया, वे लोग एक एक करके खड़े होगये, वे लोग अपना निश्चय दृढ़ नहीं रख सके। कुछ ने उन्हें आदर सन्मान के लक्षण दिखाये, कुछ ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया, और उनसे सादर उनका कोपीन, धार्मिक वस्त्र और भिक्षापात्र ले लिया, उनके लिये एक चटाई बिछाई और पैर धोने के लिये पानी भरा, फिर कहने लगे :—

"महात्मन् आप का स्वागत है; चटाई पर विराजमान हूजिये।"

इस के पश्चात् उनसे उन उन विषयों पर बात चीत आरम्भ की, जिनसे उन्हें आशा थी, कि वे प्रसन्न हो जावेंगे। वे सब उन के निकट ही एक ओर बैठ गये और बोले :—

आयुष्मन गौतम की इन्द्रियां बिलकुल पवित्र हो गई हैं, और त्वचा पूरे तौर से शुद्ध हो गई है। आयुष्मन गौतम, क्या तुम्हारे वे ज्ञान चक्षु खुल गये हैं जिन से पवित्र ज्ञान बिलकुल स्पष्ट दिखाई देता है, वह

पवित्र ज्ञान जो मानुषिक नियम से बहुत परे है ? "

बुद्ध ने उत्तर दिया " मुझे आयुष्मन की पदवी मत दो। बहुत दिनों से मैं तुम्हारे किसी काम का नहीं रहा और न तुम्हें सहायता दी है और न विश्राम। हां, अब मुझे साफ़ सूझने लगा है कि अमरता क्या है, और वह मार्ग भी जिस से अमरता मिलती है। मैं बुद्ध हूं; मैं सब जानता हूं, सब देखता हूं, मैं ने पाप को धो डाला है, मैं धर्म के नियमों का गुरु हूं, आओ मैं तुम्हें सत्य का प्रकाश दिखाऊं, ध्यान पूर्वक मेरे कथन को सुनो, मैं तुम्हें उपदेश द्वारा समझाऊंगा, और तुम्हारी आत्मा को पापों को क्षीण कर उद्धार-मार्ग पाने का उपाय और स्पष्ट आत्मज्ञान बतलाऊंगा। तुम वह सब करने में समर्थ होगे जो आवश्यक है, और फिर तुम आवागमन से पूर्णतया रहित हो जाओगे—बस यही तुम लोगों को मुझ से सीखना है।" इसके बाद उन्होंने नम्र भावसे उन लोगों को वे सब बातें कहीं जो उन्होंने दुराग्रह वश उन का अपमान करने को उन के आने के पहले गांठी थीं। उनके पांचों शिष्य उनकी यह बात सुन लज्जित हो गये। अपने को उनके पैरों पर डाल उन्हों ने अपना अपराध स्वीकार किया और बुद्ध को संसार का दीपक मान उन के नये सिद्धान्त और धर्म को सादर स्वीकृत किया। इस पहली बात चीत में और रात के अन्तिम पहर तक बुद्धने उन लोगों को अपने सिद्धान्त समझाये। यदि कुछ महत्व के थे तो येही लोग थे जो पहले पहले उनके मतानुयायी हुए।

सनातन धर्मावलम्बी हिन्दुओं की दृष्टि में काशी

बहुत पवित्र तीर्थ है, परन्तु उन से बढ़ कर बौद्ध लोग उसे पवित्र मानते हैं। पहले पहले बुद्ध ने इसी जगह अपना उपदेश दिया था, या जैसा बौद्ध पुराणों ने रूपक बांधा है, पहली बार धर्म का चक्र घुमाया था। यह चक्र* और उस में का धर्म सम्बन्धी लेख सब बौद्ध शाखाओं में प्रचलित है। उत्तर, दक्षिण और पूर्व में, तिब्बत और नैपाल से लेकर लङ्का और चीन† तक इसका प्रचार है।

सातवीं शताब्दी में ह्यूनसैङ्ग ने काशी‡ का जो वर्णन किया है, उससे सिद्ध होता है, कि बुद्ध के समय में काशी का उतना महत्त्व नहीं था, जितना उसके बाद हुआ। परन्तु उस समय भी वह एक बड़ा और विशाल नगर रहा होगा। हिन्दू धर्म के कई महा प्रधान केन्द्रों में एक यह अधिक महत्त्व का था और अब तक चला आता है। इस में कोई सन्देह नहीं, बुद्ध इसी कारण वहां गया था। वैशाली और राजगृह में ब्राह्मणों के सहस्रों शिष्य थे, और कदाचित् काशी में उनसे भी अधिक थे इस

---

* इस चक्र को, जो लट्टू की तरह का होता है, चीन व तिब्बत आदि देशों के बौद्ध 'मानेफाने' कहते हैं और अंगरेज 'बुद्धिस्ट व्हील' कहते हैं। इस चक्र के भीतर यह मंत्र "ॐ मणि पद्म हुं" छपा रहता है।

† तिब्बतियों के प्रार्थना चक्रों पर वायट ने जो लेख लिखे हैं वे पढ़ने योग्य हैं। आर्थिक सूत्रों के रूपकीय अर्थों को इन लोगों ने अक्षर अक्षर वैसा ही मान लिया है। वे लोग बड़े बड़े चक्र चलाते हैं, उन पर पवित्र प्रार्थनाएं लिखी रहती हैं और इस तरह वे लोग बुद्धदेव की प्रार्थना करते हैं।

‡ ह्यूनसैङ्ग कहता है कि काशी छः मील लम्बी और तीन मील चौड़ी थी, उसने अन्य कई कीर्त्ति स्तम्भों में एक स्तूप भी देखा था जो ३३-३४ गज ऊंचा था और पास ही एक पाषाण स्तम्भ था जो २५-२६ गज ऊंचा था। इसे अशोक ने बनवाया था। यह ठीक उसी जगह था जहां बुद्ध ने अपना पहला व्याख्यान दिया था और धर्म का चक्र घुमाया था।

कारण बुद्ध को अपने विचार और सिद्धान्त के फैलाने में इस से अधिक भयङ्कर और विस्तृत मैदान कोई नहीं मिल सका।

दुर्भाग्यवश, काशी में रहने का बुद्ध का अधिक वर्णन हमें नहीं मिला। ललितविस्तर ने विस्तार पूर्वक जिस कथा का वर्णन किया है वह पांच शिष्यों की बात चीत के बाद शेष होजाती है। अन्य सूत्र शाक्यमुनि के जीवन-चरित की बातें शृङ्खलाबद्ध नहीं बताते। इसी कारण बुद्ध के काशी में ब्राह्मणों से जो शास्त्रार्थ सम्बन्धी झगड़े हुए होंगे, वे अधिकतर अज्ञात हैं। बुद्ध ने किस तरह विपक्षियों के विरोध का सामना किया, और किस तरह सफलता पाई ये सब बातें जानने को कौन उत्सुक न होगा परन्तु क्या कहें, अभी तक इनका व्यौरेवार वर्णन प्रकाशित नहीं हुआ है। जब तक बौद्धों के नये २ सूत्र प्रकाशित न होंगे, तब तक यह चर्चा एक किनारे रखनी पड़ेगी। अब तक जितने सूत्र प्रकाशित हुए हैं उन से उपर्युक्त बातों का पूरा पता नहीं मिलता। बहुत से सूत्रों में बुद्ध के एकाध कार्य्य का ही वर्णन हुआ है। कोई कोई उसके बहुतों में से एकाध उपदेश की ही गाथा गाते हैं; परन्तु उनके जीवन का पूरा वर्णन कोई भी नहीं देता। किन्तु फिर भी उनमें इतना मसाला भरा हुआ है, कि छांट कर, बुद्ध के जीवनचरित सम्बन्धी घटनाओं को सङ्कलित करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। केवल उनका क्रम ठीक नहीं सो उसे ठीक करना सुगम है; क्योंकि घटनाओं की सचाई में कहीं अन्तर नहीं पाया जाता। बुद्ध के जीवन की कई मुख्य घटनाऐं कुछ गड़बड़ के साथ कही गई हैं, इस

कारण उनका इच्छित क्रमानुसार ठीक २ वर्णन करना कठिन है—सब घटनाओं को ऐतिहासिक तिथियों में विभक्त करना कठिन है।

यह मालूम पड़ता है कि शाक्यमुनि काशी में अधिक दिनों नहीं ठहरे। यद्यपि उन्होंने वहां बहुत से शिष्य किये, किन्तु यह नहीं मालूम पड़ता कि वे वहां बहुत दिन ठहरे हों। सूत्रों का अधिकतर भाग यही बतलाता है, कि बुद्ध का समय गङ्गा के उत्तर में, या तो मगध के राजगृह में, या कौशल की श्रवस्ती नगरी में बीतता था। इन दो राज्यों में उस के जीवन का लगभग सम्पूर्ण भाग, जो ४० वर्ष का था, बीता था। उपरोक्त दोनों देशों के नरेश उनकी रक्षा करते थे। उन दोनों ने उनका धर्म अङ्गीकार कर लिया था। बिम्बसार मगध का राजा है। उसने बुद्ध के आरम्भिक सन्यास में उन पर जो कुछ कृपा दिखाई थी, उसको पहले ही कह चुके हैं। अपने सम्पूर्ण राज्य-काल में उसने उस कृपा में कभी कमी नहीं की। राजगृह मगध राज्य के लगभग केन्द्र में था। वहां बुद्ध सहर्ष रहते थे क्योंकि वहां से वे आस पास के देशों में अपने विचारों का प्रचार सुगमता से कर सकते थे। ये सब स्थान बुद्ध को अवश्य ही प्यारे रहे होंगे क्योंकि उनके बाद ये सब स्थान उनकी स्मृति में पवित्र माने जाने लगे थे। राजगृह से बोधिमण्ड और उरुबेल कुछ दूर न थे। वहां से ६–७ मील की दूरी पर गृद्ध-कूट नाम का एक पहाड़ था। यदि ह्यूनसेङ्ग का कहना सत्य है तो इसकी एक चोटी गृद्ध के रूप, आकार से बहुत मिलती थी। यह पर्वत मनोहर दृश्यों से भरा हुआ रहता था;

तरह तरह के सुन्दर, हरे भरे पुष्पमय, वृक्षों से परिपूर्ण था ; मीठे पानी के चमकते हुए झरने पर्वत की सुन्दर प्राकृतिक छटा का प्रत्येक समय भांति भांति के प्रतिबिम्ब उतारा करते थे। इस पर्वत के आस पास बुद्ध प्रफुल्लचित्त होकर घूमा करते थे। बहुत से शिष्यों से घिरे रह कर, बुद्ध ने यहीं महाप्रज्ञा पारमिता सूत्र, और अन्य बहुत से सूत्र पढ़ाये थे।

राजगृहके उत्तरीय फाटक पर एक विशाल विहार था यहां पर बुद्ध प्रायः रहा करते थे। यह कालान्तक या कालान्तवेलु वन कहलाता था। ह्यूनसैङ्ग के लेखानुसार कालान्त एक व्यापारी का नाम था। उसने अपना उपवन पहले ब्राह्मणों को दान किया था। पीछे बुद्ध के विचारों की झनकार कान में पड़ने पर उसने ब्राह्मणों से अपना दिया हुआ दान छीन कर, बौद्धोंके हवाले किया। वहां उसने एक मनोहर विशाल भवन बनवाया, और बुद्ध को भेंट किया। इसी स्थान पर बुद्धने अत्यन्त प्रसिद्ध शिष्य अपने धर्म में मिलाये थे। उन के नाम थे शारिपुत्र, मुगल्लान और काश्यप। इसी भवनमें बुद्धकी मृत्यु के बाद पहली बौद्ध महासभा हुई थी।

राजगृह से थोड़ी ही दूरी पर एक जगह थी उसका नाम था नालन्द। मालूम होता है बुद्ध ने यहां अपना आनन्दमय वास बहुत दिनों किया होगा। यहां पर भक्त राजाओं ने बहुत से मूल्यवान् कीर्त्ति स्तम्भ बनवाये थे, इसी से उपर्युक्त बात सिद्ध होती है। पहले २ इस स्थान पर आमों का एक बड़ा उपवन था, पास ही एक झील थी। उपवन का स्वामी एक धनी पुरुष था।

५०० व्यापारियों ने मिल कर इसको क्रय किया, और बुद्ध को दान करदिया। बुद्ध ने इसके पहले तीन महीने उन लोगों को अपने धर्म में दीक्षित किया था। नरेश बिम्बिसार के उत्तराधिकारियों ने इसे बहुमूल्य भवनों से सजाया था। वहां पर उन लोगों ने छः मठ बनवाये थे। ये सङ्घाराम कहलाते थे। इन में से प्रत्येक एक दूसरे से बड़ा था। एक नरेश ने इन सबों को एक में जोड़ने के लिये ईंटों की दीवार से घेर दिया था।

ह्यूनसेङ्ग ने लिखा है कि भारतवर्ष भर में इन की बराबरी की लम्बाई चौड़ाई और मनोहरता में एक भी इमारत नहीं है, ये ही सर्वश्रेष्ठ हैं। वह कहता है, कि वहां राजा की उदारता से दस सहस्त्र साधु अर्थात् विद्यार्थी रहते थे; इन के लिये कई नगरों का भूमि कर व्यय होता था। नालन्द विश्वविद्यालय के मठों के भीतर सौ आचार्य्य नित्य शिक्षा दिया करते थे, और विद्यार्थी अपने विद्वान् अध्यापकों का तेजस्विता और आवेश के साथ अनुसरण करते थे। सहिष्णुता भी वहां की विचित्र थी। सब मिलजुल कर विद्याध्ययन करते थे। वेद और बौद्धसूत्र बराबर निष्पक्षपातसे पढ़ाये जाते थे। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद और गूढ़ दर्शन, विज्ञानादि शास्त्र भी पढ़ाये जाते थे। बुद्ध का यह प्राचीन निवास स्थान चीनी यात्री के समय में भी पवित्र समझा जाता था, और आदर सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यह पवित्र विश्वविद्यालय सात सौ वर्ष का प्राचीन था जिस समय कि ह्यूनसेङ्गने इसे देखा था। वहां पर यह यात्री कईवर्ष रहा और आनन्दके साथ अतिथिसत्कार भोगता

रहा। नालन्द विश्वविद्यालय के गुणग्राही एवं अतिथिसत्कार कारी विद्वानों ने इसका पूर्णतः आदर सन्मान किया था। इसे सुख पहुंचाने में उन लोगों ने कोई बात उठा नहीं रक्खी थी। इस बात को यह स्वयं कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता है। यहां हम नालन्द का अधिक वर्णन नहीं कर सकते। अपने प्रधान लक्ष्य बुद्ध के इतिहास के विषय को फिर ग्रहण करते हैं।

बिम्बसार अल्पवयस ही में सिंहासनारूढ़ हुआ था। नवीन धर्म में दीक्षित होने पर उस ने तीस वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अजात शत्रु, जिस ने पितृहत्या कर राजसिंहासन पाया था, पहले इस नये धर्म से चिढ़ता था। उसे यह पसन्द नहीं था। सिद्धार्थ के चचेरे भाई दुष्ट देवदत्त की बाबत आरम्भ के पृष्ठों में हम कुछ कह आये हैं। स्वयम्बर के समय से वह गौतम का शत्रु हो गया था। उसकी मन्त्रणा से अजातशत्रु ने बुद्ध को फांसने और कष्ट पहुंचाने के लिये बहुतेरे फन्दे रचे; परन्तु वह कृतकार्य नहीं हुआ। उलटा उसके शुद्ध गुणों, परिष्कृत और परिमार्जित बुद्धि और पवित्र उपदेशों से वह उसके ऊपर रीझ गया, और उसने बुद्ध से दीक्षा लेली। उस ने जिस तरह अपने पिता का सिंहासन पाया था, वह घोर अपराध भी बुद्ध के सामने खोल कर स्वीकार किया। लङ्का के एक बौद्ध सूत्र का नाम है सामन्नफल सूत्र। इस समस्त सूत्र में अजातशत्रु की दीक्षा ही की बातें भरी हैं। इस का कारण यह है कि बुद्ध को इसी एक मनुष्य को अपने धर्म में दीक्षित करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा

था। यह महात्मा-बुद्ध की सब से कठिन, किन्तु सब से अधिक गौरवसम्पन्न विजय थी। अजातशत्रु उन आठ पुरुषों में से एक है जिसने बुद्ध के स्मृति-चिन्हों का बँटवारा किया था।

चाहे बुद्ध का मगध पर कितना ही प्रेम रहा हो क्योंकि मगध उनके महाकठिन एकान्तवास और गौरव-सम्पन्न विजय का रङ्गस्थल था पर यह मालूम होता है कि वह अधिकतर कौशल में रहा करते थे। यह देश, जिस का काशी भी एक भाग है, मगध के उत्तर पश्चिम में स्थित था। इसकी राजधानी श्रवस्ती थी। प्रसन्नजीत राजा था। श्रवस्ती का स्थान आधुनिक फैज़ाबाद के आस पास ही रहा होगा*। प्रसन्नजीत ने एक निमन्त्रण पत्र भेजा था, जिसको स्वीकार कर बुद्ध बिम्बसार की इच्छा से वहां गये। अनाथ पिण्डक या अनाथ पिण्डध का प्रसिद्ध उद्यान, जो जेतबन कहलाता था, बुद्ध के व्याख्यानों से गूंज गया। सूत्रों में जिन जिन व्याख्यानों का सार दिया है वे लगभग सब ही यहीं लोगों के कर्ण कुहर में पड़े थे। ह्यूनसैङ्ग कहता है कि अनाथ पिण्डक ने, जिस की प्रसिद्धि असीम उदारता और दानशीलता में, निर्धनों और अनाथों की सहायता में विख्यात थी, यह उद्यान बुद्ध को दान कर दिया था। अनाथ पिण्डक राजा प्रसन्नजीत का मन्त्री था। उसने इस सम्पत्ति को बहुत सी सुवर्ण देकर राजा के ज्येष्ठ पुत्र जेत से मोल लिया था इसी कारण इस उद्यान का नाम जेत वन पड़ा। अत्यन्त

---

* जनरल कनिङ्घमने अवध प्रान्त के सहत महेत नामक गांव की खंडहरों को श्रवस्ती के खँडहरों से मिलाया है

मनोहर, सुन्दर और सायादार वृक्षों के नीचे जेत वन के बीचों बीच अनाथ पिण्डक ने एक विहार बनवाया। यहां पर बुद्ध २३ वर्ष रहे प्रसन्नजीत ने स्वयं नवीन धर्म में दीक्षित होने पर नगर के पूर्व की ओर एक व्याख्यान शाला बनवाई थी। ह्यूनसैङ्ग ने इस के खँडहर देखे थे। इन के ऊपर एक स्तूप था। इस से थोड़ी दूर एक बुर्ज था। यह एक प्राचीन विहार के खँडहर के रूप में था। इस विहार को बुद्ध की मौसी प्रजापति गौतमी ने बनवाया था। इस घटना से सिद्ध होता है कि बुद्ध के घर के लोग अधिक नहीं तो कुछ उनसे इस प्यारी जगह में आन मिले थे। उस जगह में जो बुद्ध को आनन्ददायक थी और जहां के निवासी उन्हें बहुत अधिक चाहते थे अपने चचेरे भाई आनन्द के बहुत कुछ कहने सुनने पर उन्होंने महाप्रजापति गौतमी को अपने धर्म में दीक्षित किया था। यही पहली स्त्री थी, जो पहले पहले बौद्ध हुई। दीक्षित करने के उपरान्त उसने गौतमी को धार्मिक जीवन बिताने की आज्ञा देदी थी।

श्रवस्ती से १८-१९ मील दक्षिण ह्यूनसैङ्ग को वह स्थान भी बताया गया था, जहां १२ वर्ष के वियोग के बाद बुद्ध अपने पिता से मिले थे। शुद्धोदन को अपने पुत्र से बिछड़ने का महाशोक हुआ था, और उन्हों ने उन्हें पुनः जंजाल में घसीटने के निरन्तर प्रयत्न किये थे। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इसतरह ८ दूत उन की खोज में भेजे थे परन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि वे सब राजकुमार के मनोहर व्याख्यानों और चरित्र की श्रेष्ठता पर ऐसे लुब्ध हुए कि फिर कभी न फिरे, वे लोग

उनके संग में जा मिले। अन्त में राजा ने अपने एक मन्त्री को भेजा। इसका नाम चरक था। दूसरे दूतों की तरह यह भी बौद्ध होगया, परन्तु यह राजा के पास लौट कर गया, और बुद्ध के आने का समाचार सुनाया। मालूम होता है कि शुद्धोदन बुद्ध के आने की बाट न देख कर स्वयं ही उनके पास चले गये। बुद्ध पिता से मिले, और थोड़े दिनों में कपिलवस्तु चले गये। शुद्धोदन की देखा देखी अन्य शाक्य भी बौद्ध होगये। सचमुच उनमें से बहुतेरों ने बौद्धों के धार्मिक वस्त्र भी पहिन लिये। बुद्ध की तीन पत्नियों गोपा, यशोधरा और उत्पलवर्णा ने, और अन्य बहुत सी स्त्रियों ने बौद्ध साध्वी होना स्वीकार किया।

जन साधारण की सहानुभूति का आधार होते, और बडे २ बली राजाओं की सहायता और रक्षा पाते हुए भी बुद्ध को ब्राह्मणों से अत्यन्त विकट मुक़ाबिला करना पड़ा था। उन लोगों की प्रतिद्वन्द्विता कभी कभी बुद्ध के लिये महा भयङ्कर होजाती थी। इतिहासलेखकों ने जो ब्राह्मणों की धर्मपद्धति को नीचा दिखाने और घृणित बनाने के प्रयत्न किये हैं वे कुछ छिपे नहीं हैं। उनके किसी भी शास्त्र को लीजिये, यूरोपीय घमण्डी विद्वान् उन सब की—यद्यपि वे उनके विषय से थोड़ी ही जानकारी रखते हैं—सदा निन्दा किया करते हैं, और किसी न किसी बहाने उनका खण्डन किया करते हैं। फ़ाहियान और ह्यूनसेङ्ग ने जो यात्रा-पुस्तकें लिखी हैं, वे सर्वथा सचाइयों का कोष नहीं हैं। उन में से बहुत सी बातें पूछ कर लिखी गई होंगी, कुछ भ्रमात्मक बुद्धि से, कुछ दुरा-

ग्रह से और कुछ मूढ़ विश्वास से लिखी हुई मालूम होती हैं। हम यह नहीं कहते हैं कि ल्यूनसैङ्ग ने जो भारतवृत्तान्त लिखा है, वह, सर्वथा ही भ्रममूलक और असत्य है। ल्यूनसैङ्ग ने ब्राह्मण पण्डितों की हर जगह बुराई की है, और बौद्धों की प्रत्येक जगह प्रशंसा। बुद्ध के धर्म की जो उन्नति उस समय हुई, उसके तीन मुख्यकारण हैं। १—वेदों की संस्कृत समझना बहुत ही कठिन होगया था। २—छोटे अपढ़ लोग धार्मिक विषय में प्रत्येक बात के लिये ब्राह्मणों का मुंह ताका करते थे। ३—उन लोगों में सरलता और उदारता की जगह धीरे धीरे अकड़ और घमण्ड होता जाता था। लोग उनसे उकता चले थे। बुद्धने धर्म को सब के सम्मुख प्रकट किया। परन्तु ब्राह्मणों ने लापरवाही के कारण उस ओर ध्यान नहीं दिया। बुद्ध को राजाओं की रक्षा का सहारा था, इससे उन्हें प्रजा का चित्त आकर्षण करने में कोई बाधा नहीं पड़ी, क्योंकि प्रजा राजा की प्रायः नकल करती है। बुद्ध का शील चरित्र बहुत बढ़ा चढ़ा था। उन के पवित्र गुणों और चित्ताकर्षक व्याख्यान ने बहुतों का हृदय मोह लिया था। बुद्ध ने यह कभी नहीं कहा कि बौद्ध धर्म कोई नया धर्म है। उनकी बातों से प्रकट होता है कि वे केवल सुधारक थे, नवीन धर्म प्रचारक न थे परन्तु पीछे वे नवीन धर्म प्रचारक माने गये, यद्यपि उस समय ऐसा होने की बहुत कम सम्भावना थी। ब्राह्मण लोग बुद्ध के सिद्धान्तों को केवल दर्शन की एक नई परिपाटी मानते थे। वह आवागमन को मानते थे, केवल मोक्ष के मार्ग में कुछ थोड़ा सा अन्तर था। इस को दर्शन की

नई परिपाटी समझ,—जैसा भारतवर्ष में सदा ही हुआ करता था—विचारक लोग नये २ सिद्धान्त निकालते थे। उन लोगोंने मामूली खण्डन के सिवाय कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया। इसी कारण बौद्ध धर्म की उन्नति होती चली गई, और अन्त में उसने वह जोर पकड़ा, जो बड़ी ही कठिनाई से तोड़ा जा सका था।

ब्राह्मण लोगों के धर्म ग्रन्थ संस्कृतमें थे, इससे साधारण लोग उसके समझने में असमर्थ थे, और इसी कारण घोर अन्धकार में पड़े रहते थे। बुद्ध के व्याख्यान उस समय की प्रचलित भाषा (पाली) में हुआ करते थे। अपढ़ से अपढ़ लोग भी उन्हें समझ जाते थे। वेद की बातों को वे उपरोक्त कारण से जानते तो थेही नहीं, इस कारण उनमें खण्डन की शक्ति नहीं थी। उन्होंने बुद्ध से जो कुछ सुना लगभग नया ही जाना, और उन के मधुर और चित्ताकर्षक व्याख्यानों पर मुग्ध होकर उनके अनुयायी हो गये। इन कारणों के अतिरिक्त और भी कई छोटे मोटे कारण हैं, परन्तु उनके उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है।

बुद्ध ब्राह्मणों के निरन्तर आक्रमणों से खीज कर उन लोगों पर बड़े २ कटाक्ष और मर्मवेधी टीका टिप्पणी किया करते थे। वे उनकी प्रत्येक दर्शन पद्धति का खण्डन करते थे और ब्राह्मणों को भण्ड, पाखण्डी, और मक्कार कहा करते थे तिसपर भी दोनों दलों में कोई बड़ा भेद नहीं था। यहां पर यूरोप के विरुद्ध प्रत्येक को धर्म स्वातंत्र्य रहा है। यदि यूरोप में बुद्ध का जन्म होता तो वे या तो जला दिये जाते, या न्याय के मिस

से मारडाले जाते, परन्तु भारत में सब को अपने अपने विचार प्रकट करने की स्वाधीनता थी, और इस पर भी ब्राह्मणों ने मारे घमण्ड के लापरवाही की, बस फिर क्या था, बौद्ध धर्म की अच्छी बन पड़ी। प्रतिहार्य सूत्र नाम की एक कहानी की पुस्तक है। उस में प्रसन्नजीत के सन्मुख ब्राह्मणों और बौद्धों का जो शास्त्रार्थ हुआ था, उसका वर्णन है। उस शास्त्रार्थ में ब्राह्मण हार गये थे। यह एक तरह का दङ्गल सा था। इस में राजा और प्रजा निबटेरा करने वाले बनाये गये थे। बस इन्हीं सब बातोंका उपरोक्त सूत्रमें समावेश है। इससे भी अधिक विचित्र कहानी में एक कथा लिखी है। वह इस प्रकार है:—

भद्रङ्कर नाम का एक गांव था। वहां के नागरिकों से ब्राह्मणों ने वचन लेलिया था, कि वे लोग बुद्ध को अपने नगर में नहीं घुसने देंगे। परन्तु जब भागवत (बुद्ध) ने नगरमें प्रवेश करना चाहा तो एक ब्राह्मणी, जो कपिल-वस्तुकी निवासिनी थी, और भद्रङ्करमें व्याही थी, चुपकेसे रात को दीवार लांघ कर बुद्ध के पास पहुंची। वह उनके पैरों पर गिर पड़ी और नवीन धर्म की शिक्षा पाने की प्रार्थना करने लगी। उसका अनुकरण एक अत्यन्त धनी नागरिक ने, जिसका नाम मेन्धक था, किया। उसने सब लोगों को जोड़ कर व्याख्यान दिये और सब को स्वतन्त्र कर्त्ता के लिये जीत लिया। यह ही क्यों और भी बड़े बड़े झगड़े हुए होंगे। फ़ाहियान और ह्यूनसैङ्ग, जो कि बुद्ध के सहस्र वर्ष उपरान्त आये, लिखते हैं कि लोगों ने बुद्ध के मार डालने का भी बहुत बार चेष्टा की थी परन्तु बुद्ध इन सब आपत्तियों से बचते गये।

बुद्धके जीवन सम्बन्धी घटनाओं के वर्णन में कुछ न कुछ गड़बड़ अवश्य है ; परन्तु जहां उनकी मृत्यु हुई उसके विषय में सब एक मत हैं। सब कुशीनगर में उनका देहान्त होना बताते हैं। यह नगर इसी नाम के राज्य का राजस्थान था। इसमें कोई संशय नहीं कि यह प्रसन्नजीत के कौशल का एक भाग होगा। इस समय बुद्ध की आयु ८० वर्ष की थी। वे मगध की राजधानी से राजगृह को लौटे थे और अपने चचेरे भाई आनन्द और बहुत से लोगों के साथ आरहे थे। गङ्गा के दक्षिणीय किनारे पर पहुंच, पार उतरने के पहले, एक वर्गाकार बड़े पत्थर के ऊपर खड़े हुए और बड़े प्यार के साथ अपने साथियों की ओर प्रेम की दृष्टिपात कर बोले "यही सब से अंतिम समय है जो राजगृह और प्रजासनम् के देखने का है। अब मैं इन स्थानों को फिर कभी नहीं देखूंगा।"

गङ्गा के पार उतरने के उपरान्त वह वैशाली नगरी में गये और वहां भी उन्हों ने वेही विदाई के मर्मस्पर्शी वाक्य कहे। यहां पर कई मनुष्य उनके अनुयायी साधु होगये। इन में सब से अन्तिम सन्यासी सुभद्र नाम का था। कुशीनगर ग्राम के आध मील उत्तर पश्चिम, अचिरावती नदी के पास, मल्ल देश था। वहां पर वे यकायक मूर्छित होगये। शाल वृक्षों की एक कुञ्ज के नीचे उन की श्रेष्ठ आत्मा ने उनका साथछोड़ दिया, या जैसा बुद्ध पुराण कहते हैं, वह निर्वाण के द्वार में प्रविष्ट होगये। ह्यूनसेङ्ग ने चार शाल के पेड़ देखे थे। वे चारों एक सी उंचाई के थे। कहा जाता था, कि बुद्ध ने इन के नीचे अपना प्राण छोड़ा था। लङ्का का इतिहास कहता है कि अजातशत्रु

के आठवें राज्यवर्ष में बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था।

तिब्बती दल्व कहता है कि बुद्ध की अन्त्येष्टि क्रिया [चितादाह] बड़े समारोह के साथ की गई थी। यह उतनी ही बढ़ी चढ़ी हुई थी, जितनी किसी एक चक्रवर्ती राजा की की जाती है। उनका सब से अधिक प्रसिद्ध और योग्य शिष्य अभिधर्म का रचयिता, जिसने पहली बौद्ध महासभा में सब से अधिक काम किया था, इस समय वहां न था। वह राजगृह में था। परन्तु ज्योंहीं उसने बुद्ध के परलोकवास का समाचार पाया त्योंहीं वह तुरन्त कुशीनगर को दौड़ा चला आया। बुद्ध का शव उनके देहान्त के आठ दिन पीछे तक नहीं जलाया गया था। बहुत लड़ाई झगड़े के बाद, जो लोहू लुहान तक पहुंच गया था, और जो केवल उस नम्रता और शान्ति द्वारा ठण्डा पड़ा था जिसकी बुद्ध मूर्ति थे, और जिसे उन्होंने अपने शिष्यों के रक्त में खूब भेद दिया था, अन्त में यह ठहरा कि बुद्ध के शव के आठ भाग किये जावें। इन में से एक कपिलवस्तु के शाक्यों को दिया गया था।

उपसंहार।

महात्मा बुद्ध के जीवन-चरित्र की यदि कुछ बातें छोड़ दी जावें तो यह अपूर्ण रहेगा। इस कारण इस महा विद्वान् के धर्म्म सम्बन्धी विचारों की भी कुछ चर्चा करना ज़रूरी है।

शाक्यमुनि तत्ववेत्ता थे, ऋषि भी हो सकते हैं, परन्तु उन्हें कुछ और मान लेना भूल है। बुद्ध ने कभी अपने को ईश्वर का अवतार नहीं कहा। सचमुच वह उस समय के बिगड़े हुए वैदिक धर्म का सुधार मात्र करना चाहते थे, परन्तु करते २ उनके सिद्धान्त कुछ के कुछ हो गये। उस समय जाति विभाग की कठिनाइयां असह्य हो चलीं थीं, ब्राह्मण लोग निम्न श्रेणी के लोगों को बिलकुल अन्धकार में ढकेलने लगे थे, और उन के साथ कुछ २ निर्दयता का भी बर्त्ताव हो चला था। इन्हीं कारणों से बुद्ध के हृदय में अपूर्व दया का संचार हुआ। उन्होंने सचमुच संसार को पाप से बचाने की चेष्टा की। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये उन्हों ने भोग विलास छोड़ा, घर द्वार छोड़ा, और संसार भी छोड़ा। अहा, कैसा अपूर्व आत्मत्याग था!

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि बुद्ध के बराबर वाग्मी महात्मा न कोई कभी हुआ, न है, और न होगा। उनमें मोह लेने की जो शक्ति थी, वह अश्रुतपूर्व थी। उन की वक्तृत्व शक्ति की उपमा शङ्कराचार्य को छोड़कर, संसार में किसी से भी नहीं दी जासकती। जो लोग केवल उत्सुकतावश उन के व्याख्यान सुनने जाते थे, जो लोग उनके विरुद्ध मनसूबे गांठकर उसके सामने पहुंचते थे, वे भी उनका धर्म अङ्गीकार कर लेते थे।

पहले बुद्ध का विचार वेदप्रचार ही का था, उन्हों ने अपने जन्म भर वेद के महत्त्व के विरुद्ध कोई बात नहीं कही। हां, धीरे २ उन के विचार बदलते गये। फिर तो वे वेद ही क्या, वेद के आधार ईश्वर को भी भूल गये। उन्होंने केवल असीम स्वावलम्ब का नमूना लोगों के सामने रख दिया। कहा, अपने ही बाहुबल से तुम भवसागर पार कर सकते हो। बुद्ध ने स्वर्ग माना है, नरक माना है और सब माना है, केवल एक जगदाधार ईश्वर को ही वे भूल गये।

बुद्ध का उद्देश्य बहुत ही श्रेष्ठ, और लक्ष्य बहुत ही ऊंचा था, परन्तु जो विषय उन्हों ने उनके सिद्ध होने के लिये चलाये, वे अन्त में चिरस्थायी न ठहरे। यह बात ब्रह्मदेश, स्याम, जावा, चीन, तिब्बत, मङ्गोलिया और कई अंशों में जापान में भी प्रत्यक्ष दिखाई देती है। बिना ईश्वर के अन्तःकरण को शान्ति नहीं मिलती। उस के बिना यह चञ्चल हो कर नटरगश्त लगाता रहता है। यही कारण है, कि उपर्युक्त देशों में बौद्ध धर्म—बुद्ध के निश्चित सिद्धान्त—अपनी पहली हालत में नहीं हैं। बुद्ध ने मूर्त्तिपूजा के लिये कब कहा था ? परन्तु जितनी मूर्त्तिपूजा बौद्ध धर्मानुयायियों में होती है, उतनी किसी में नहीं। बुद्ध ने कब कहा, कि मैं किसी महाशक्ति का अवतार या स्वयं कोई महाशक्ति हूं ?—याद रखिये, बुद्ध ईश्वर को ज़रा भी न मानते थे। परन्तु फिर भी सम्पूर्ण बौद्ध बुद्ध बुद्ध रटा करते हैं। यह क्यों ? बुद्ध ने तो कभी इन बातों का उपदेश ही नहीं किया। बुद्ध के न कहने पर भी लोग मूर्त्तिपूजा करने लगे, और दूसरे रूप में ईश्वरवाद भी करने लगे।

बुद्ध की युक्ति बहुत प्रबल होती थीं, उनकी बुद्धि-कुशाग्रता अपूर्व थी, उनके ज्ञान के सामने बड़े २ विद्वानों को बुद्धि चकरा जाती थी, वे बहुत सी बातों के जानने वाले थे, उनके बराबर करुणा किसी में न रही होगी, वह सच्चे दिल से मानव जाति का उद्धार करना चाहते थे, वह जो कुछ कहते और करते थे, अपने अन्तःकरण से कहते और करते थे, परन्तु उन के विचारों की, उनके सिद्धान्तों की जड़ कच्ची थी। जिस नींव पर अपना धर्म खड़ा करना चाहते थे, वह नींव ही कच्ची थी। उन्हों ने संसार को अत्यन्त विरक्त भाव से देखा है। उन्हें संसार में दुःख के महा ऊंचे २ पहाड़ों के सिवाय और कुछ भी न दिखाई दिया। उनका सिद्धान्त था, कि दुनिया में सिवाय दुःख के सुख रत्ती भर क्या, परमाणु भर भी नहीं। यह उन की बड़ी भारी भूल थी। निःसन्देह संसार में दुःख है, परन्तु जहां दुःख है, वहां सुख ज़रूर है। यदि ईश्वर ने संसार को केवल दुःखमय और पीड़ापूरित ही बनाया होता तो इसका बनाना और न बनाना दोनों बराबर था। दुःख है परन्तु सुख भी है। यदि संसार में दुःख है, तो उसे दूर करो, उस से डर कर और निराश होकर भागना कायरता का काम है।

बुद्ध के धर्म ने भारत को लाभ भी पहुंचाया, और उस की हानि भी कुछ थोड़ी नहीं की। इस धर्म के साथ २ यहां वैद्यक विद्या, शिलालेख प्रणाली, और नये २ दर्शन शास्त्र के विचारों ने खूब उन्नति की। पूर्वी दुनिया ने भारत से धर्म के साथ सभ्यता सीखी। जिन देशों ने भारत से उसका पैदा किया हुआ, यह नया मत सीखा, वे इसे परम पवित्र मानने लगे। भारत की इस तरह दूसरे देशों से

जानकारी बढ़जाने से यहां शिल्प की खूब उन्नति हुई और यह देश धन धान्य से परिपूर्ण होने लगा। अब भारतवर्ष—यद्यपि उसका उत्तरोत्तर पतन ही होता जाता था—संसार भर के सब देशों का सिरमौर होगया। आप कहते होंगे, कि बाबुल, मिश्र, यूनान, फ़ारस (संस्कृत पारस) और रोम देश भी तो भारत से कुछ कम सभ्य न थे। हम मानते हैं, कि सभ्य थे, परन्तु इस भारत के मुक़ाबले में कुछ भी न थे। याद रखिये कि जिस समय उपरोक्त देश "सभ्य" कहलाते थे, उस समय भारत पतन-मार्ग पर होने पर भी उन से ऊंचा था। यदि यूनान में अफ़लातून (Plato प्लेटो) हुआ तो भारत में उस से बढ़ कर कपिल हुए थे, यदि यूनान में अरस्तू (Aristotle एरिस्टोटिल) हुआ, तो उसके गुरुतुल्य यहां वशिष्ठ हुए, यूनान में प्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडोटस हुआ तो उसको लज्जित करने वाले यहां कृष्णद्वैपायन व्यास हुए, यदि यूनान में महाबली हरक्यूलीज़ था तो उस से कई गुने बल वाले अमोघवीर्यशाली भीमसेन, अर्जुन और हनुमान थे। चरक, सुश्रुत और वाग्भट के वैद्यक की समता करना आज भी कठिन है। मिश्र के पिरामिड देखकर क्या कोई यहां के पहाड़ काट काट कर बनाये हुए विशाल, विचित्र, अनुपम और सुन्दर मन्दिर भूल सकता है? बाबुल का व्यवहार सदा भारत से रहा है। यहां के नक़्क़ाशी किये हुए पत्थर वहां की इमारतों में लगाये जाते थे। यहां के रेशमी और ज़री के वस्त्र बाबुल के तो क्या, सभ्य संसार के समस्त स्त्री पुरुष शौक़ के साथ पहनते थे। रोममें ग्लेडियेटर फ़ाइट (Gladiator fight) एक तरह की लड़ाई, जिसमें सिंह, भालू इत्यादि जङ्गली

जन्तुओंसे मनुष्य लड़ाये जाते थे, के विशाल भवनके चंदोवा किस देश के वस्त्रों का बनाया जाता था ? भारत रेशम, ज़री और पच्चीकारी के काम के लिये प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। यहां के ये वस्त्र रोम में बहुतायत से जाते थे। दक्षिण में क्लाडियस के ज़माने के रोमन सिक्के मिले हैं, इस से यह बात सिद्ध होती है कि पाश्चात्य देशों में भारत की सभ्यता का नमूना—व्यापार—खूब चमका था। एक बार, इस भारतीय व्यापार से रोम को ऐसा धक्का लगा था, कि वहांका वाणिज्य व्यापार और शिल्प डूबने लगा, तब वहां वालों ने एक क़ानून बना कर यहां के माल का बहिष्कार तक कर डाला था। अब हम अपने वीरवर भीष्म पितामह को सामने रखते हैं। हमें विश्वास है, कि कोई भी देश इतने भारी महात्मा का गर्व और दावा नहीं कर सकता। फिर बालक, किन्तु अनन्य वीर अभिमन्युकी भी कोई समता किसी देशमें नहीं है ? ये सब बातें भारत की प्राचीन सभ्यता का थोड़ा सा नमूना दिखाने को कही गई हैं।

महाभारत से भारत का सम्पूर्ण शरीर जर्जर हो गया था, उसके शारीरिक घाव अभी सूखने भी न पाये थे—बहुत से तो सड़ तक गये थे,—कि बुद्ध ने उसकी चिकित्सा करनी चाही। बुद्ध का इरादा बहुत ही अच्छा था, यह हम पहले ही कह आये हैं,—परन्तु जिस औषधि को उन्होंने भारत के मानसिक रोग के लिये उपयोगी समझा था, वह बिलकुल उलटी हुई। " मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की "।

बुद्ध ने स्वयं कुछ नहीं लिखा, उन के पीछे उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों को इकट्ठा कर पुस्तक का रूप

दिया। अपने धर्म का खूब प्रचार करने के लिये बुद्ध ने जो व्याख्यान दिये थे उन के शिष्यों ने उनको उस समय की प्रचलित भाषा [पाली] में लेखबद्ध किया। बरनफ (Burnough) कहता है, कि बौद्ध सूत्रों की लेखन-प्रणाली बड़ी वाहियात है और उनका साहित्य भी जाना हुआ नहीं है; क्योंकि बौद्धों को किसी तरह की भी कला में निपुणता प्राप्त न थी, भिक्षु ही ठहरे।

लङ्का, ब्रह्मा, पीगू, स्याम और चीन में जो चार "सत्य" कहे जाते हैं उनका बड़ा भारी आदर है। इनको सम्पूर्ण बौद्ध जानते हैं। ये "आर्याणि सत्यानि" कहलाते हैं। उनका व्यौरा इस प्रकार है :—

पहला सत्य, दुःख की वह दशा, जो मानव जाति को एक या दूसरे रूप में सताती है, अवश्यम्भावी है; चाहे मनुष्य की कुछ भी स्थिति क्यों न हो। (यह "सत्य" बिल्कुल सत्य है, परन्तु इस से छुटकारा पाने के उपाय उतने ही अधूरे हैं जितना यह सत्य है।)

दूसरा सत्य, इन्द्रियों को वश में न रखने से, पापपूर्ण वासनाओं में लिप्त रहने से, सब दुःख होते हैं। [इस में कोई सन्देह नहीं।]

तीसरा सत्य, उपर्युक्त दोनों क्लेशों की सान्त्वना के लिये यह तीसरा सत्य है। निर्वाण, जो कि मनुष्यमात्र के प्रयत्नों का सार है, इन क्लेशों से बचा सकता है।

चौथा सत्य, क्लेशों के बचाने वाला मार्ग है। यह मार्ग, वही निर्वाण है। इस को दूसरे शब्दों में मोक्ष का उपाय भी कह सकते हैं।

फिर निर्वाण पाने के लिये "आठ श्रेष्ठ उपाय" हैं। वे इस प्रकार हैं:—

पहला है, भक्ति और धर्मदृढ़ता; दूसरा है, सत्यपूर्ण न्याय जिस से संशय दूर हो जाते हैं; तीसरा, सत्य संभाषण, अर्थात् झूठ का सर्वथा त्याग और प्रत्येक बात में सत्य ही बोलना और उसी के अनुसार करना; चौथा, सत्यपूर्ण उद्देश्य, अर्थात् सदा खरी ईमानदारी का व्यवहार; पांचवां, जीवन का न्यायपूर्ण पोषण अर्थात् दोषरहित और पापहीन कामों से-सन्यासी होकर-जीवन निर्वाह करना; छठवां धर्म में ठीक २ और पूरा मन लगाना; सातवां सच्ची स्मृति का रखना, अर्थात् वे बातें जो हो चुकी हैं, उनका ठीक २ याद रखना; आठवां और अन्तिम है, सत्यपूर्ण ध्यान (इसे बौद्ध लोग भावना कहते हैं) जिस से मनुष्य इसी लोक में शान्ति, जो निर्वाण के बराबर के दर्जे की है, पासकता है।

उपर्युक्त चार " आर्य्याणि सत्यानि " बुद्ध को बोधिसण्ड पर बोध वृक्ष के नीचे प्राप्त हुए थे। ये सिद्धान्त बुद्ध ने पहले काशी में फैलाये थे, और फिर कौशल के अधकचरे पण्डितों को हराकर उन्होंने ये सिद्धान्त सम्पूर्ण देशों फैलाये। इन चार सत्यों को इस तरह भी दुहरा सकते हैं दुःख का अस्तित्व, दुःख का कारण, दुःख का नाश, और दुःख के नाश करने का उपाय। एक तरह से ये " सत्य " ही बौद्ध धर्म की नींव हैं। बौद्ध सन्त इन को बड़े प्रेम के साथ दुहराते हैं और ये लगभग बुद्ध की सम्पूर्ण मूर्त्तियों के नीचे खुदे हुए भी पाये जाते हैं।

इन " सत्यों " और " उपायों " के बाद कुछ उपदेशपूर्ण सिद्धान्त वाक्य भी हैं। ये बहुत ही सीधे साधे हैं। इन्हीं में एक भाग पांच सिद्धान्तों का है और दूसरा भी पांच का। इस तरह सब मिलाकर, ये दस होते हैं।

ईसाइयों ने अवश्य ही कुछ अदल बदल के साथ इन्हीं दसों को अपने यहां भी स्थान दिया है। इस से साफ सिद्ध हो जावेगा, कि कुछ परिवर्त्तन के साथ, ईसाई धर्म बौद्ध मत ही से निकला है। केवल दो बातें परिवर्त्तन में भुला दी गईं हैं। एक तो अहिंसा और द्वितीय पुनर्जन्म। अहिंसा विना जीवन निर्वाह कठिन समझा होगा और पुनर्जन्म का सिद्धान्त समझ में आया न होगा। बाबू हरिश्चन्द्र ने लिखा है, कि भारत के उत्तर और पूर्वोत्तर देशों में गौतम को गोडमा कहते हैं। बिगड़ते २ गोडमा का अपभ्रंश गौड होगया। क्या यही शब्द बाइबिल का गौड (God) है ? अस्तु, कुछ ही हो, यह निर्विवाद है, कि अशोक के भेजे हुए उपदेशकों के उपदेश ईसा के समय में भी मिश्र, बाबुल, बैक्ट्रिया, और एशिया माइनर में फैले हुए थे। उन्हीं उपदेशों को—जो पुराने पड़गये थे—ईसा ने परिमार्ज्जित कर लोगों में फैलाये होंगे। बहुत से (जर्मनी के कई विद्वान्) तो इस बात की भी शङ्का करने लगे हैं कि ईसा नामक पुरुष इस संसार में कभी पैदा हुआ या नहींहुआ। अस्तु, वे दस उपदेश बुद्ध के इस तरह पर हैं—

पहले पांच (इनका अवश्य ही पालन होना चाहिये)

(१) हत्या मत कर, [ईसाई केवल मनुष्य हत्या न करने को कहते हैं।] (२) चोरी मत कर, (३) व्यभिचार मत कर, (४) झूठ मत बोल, (५) मद्य मत पी।

दूसरे पांच (ये ऐसे हैं, जो महत्व के होने पर भी, ज्यादा ध्यान से नहीं माने जाते)

(१) नियत समय के सिवाय कभी भोजन मत कर, (२) नाचना, गाना, सङ्गीत और नाट्याभिनय को देखने तक का निषेध, (३) नरम नरम बिछौनों [जिस में भोग

विलास की सूझे] पर मत सो। [४] पुष्पमाला या इत्र का व्यवहार मत कर। (५) सोना या चांदी स्वीकार न करना चाहिये।

इन दसों नियमों या आज्ञाओं का वैरामिनी भी कहते हैं। प्रत्येक बौद्ध मत में विश्वास रखने वाले को इन बातों का जानना परम आवश्यक है। पहली पांच आज्ञाएँ प्रत्येक बौद्ध को माननी चाहिये। पिछली पांच केवल परिव्राजकों, सन्यासियों, सन्तों या साधुओं के लिये हैं। इन पिछलों के लिये और भी बहुत से नियम हैं। ऊपर के नियम वेद और ब्राह्मणों ही से लिये गये हैं। बुद्ध ने जो साधुओं के लिये नियम बनाये थे वे बहुत ही कड़े थे। उन्हों ने एक तरफ़ से जातिबन्धन ढीला कर दिया, दूसरी तरफ़ ये नियम उस बन्धन से भी ज़ियादह कड़े बना दिये। परन्तु वे स्वयं इन नियमों का पूरा पूरा पालन करते थे। भिक्षु, श्रमण इत्यादि उपाधियां जो बौद्ध साधुगण अपने लिये लगाते थे वे स्वयं उपर्युक्त बात का प्रतिध्वनित करती हैं। बुद्ध भी इन उपाधियों को अपने लिये प्रयोग करने में सङ्कोच न करते थे। वे अपने को कई जगह महाभिक्षु और श्रमण गौतम कहते हैं। निःसन्देह, उपरोक्त नियमों का पालन करने वाला महात्मा हो सकता है। परन्तु समाज का उन से हित होना बड़ा कठिन है।

बुद्ध ने अपने धर्म्म का प्रचार नम्रता से करनेकी आज्ञा दी है। उनके धर्म्म सिद्धान्तों का प्रचार तलवार के ज़ोर से नहीं हुआ था। वह कटाक्ष और तीव्र आलोचना भी न करते थे, जो कुछ करते थे, उसे बहुत सरलता और नम्रता से करते थे। बुद्ध ने माता पिता की आज्ञा मानने और उनकी सेवा करने की भी कड़ी आज्ञा दी है। प्राचीन

ऋषियों और पूर्वजों का भी ये महात्मा बड़ा आदर करते थे। बौद्ध धर्म–ध्यानियों के लिये अच्छा होसकता है, परन्तु सर्व साधारण इस से कोई लाभ नहीं उठा सकते। इसके कारण आबादी भी बहुत कुछ घट सकती है; क्योंकि जब जिस के विरक्त भाव हो गये तो गृहस्थ क्यों होने लगा? मङ्गोलिया और चीन–जहां यह धर्म विशेष जमा हुआ है–तक के साधारण लोग इस धर्म के बहुत से तत्व नहीं समझते। अहिंसा तो वहां है ही नहीं-लोग कुत्ते बिल्ली तक मार कर खाजाते हैं–व्यभिचार का बड़ा भयानक प्रचार हो गया है। जब से उन लोगों ने पादरियों का तलाक़ (Divorce) वाला मन्त्र सीखा है, तब से तो इस में 'छूमन्तर' की सी बढ़ती हुई है। उपरोक्त देशों में किसी किसी मठ में पचीस पचीस हज़ार तक निठल्ले साधु भरे हुए हैं। इस से वहां की समाजों और उक्त देशों को बड़ा धक्का पहुंचा है।

बुद्ध लोगों को समझाने के लिये ऐसी ऐसी मनोहर और उपदेशपूर्ण कथाएं कहते थे, कि उनकी स्फूर्त्ति और बहुज्ञता का उन से अच्छा पता लगता है। उन में से एक दो ये हैं:—

काशी के समीप एक लड़की रहती थी। इसका नाम था कृष्णा गौतमी। इसका विवाह कम अवस्थामें होगया था*। इस से एक लड़के का जन्म हुआ। जब वह चलने फिरने लायक़ हो गया, तब वह मर गया। कृष्णा को अपने बच्चे से असीम प्रेम था। वह उसे गोद में लेकर द्वार द्वार पर औषधि पाने की लालसा से–बच्चे को पुनर्जीवित करने

---

* बाल विवाह की कुप्रथा यहां मुसलमानों के ज़माने से नहीं, कुछ पहले ही से चली आती है।

की इच्छा से—मारी मारी फिरी, परन्तु मरे हुए बच्चे को कोई अच्छा न कर सका। अन्त में एक बुद्धिमान् पुरुष ने उसका वृत्तान्त सुनकर, अपने मन में सोचा "अफसोस! यह कृष्णा गौतमी मृत्यु का तत्त्व नहीं समझती। मैं इसे सान्त्वना दूंगा।" उस ने उस लड़की से कहा, "मेरी प्यारी बेटी, मुझे कोई ऐसी दवा नहीं मालूम जिस से तेरा पुत्र पुनः जीवन पा सके, परन्तु मैं एक ऐसे पुरुष को जानता हूं, जो तुझे दवा दे सकता है।" "कृपा कर के बताइये वह कौन है, बताइये बताइये" लड़कीने कहा। उसने जवाब दिया "उस का नाम बुद्ध है।" लड़की दौड़ी दौड़ी बुद्ध के पास पहुंची। सादर प्रणाम कर के उसने बुद्ध पर अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसने उससे कहा, "हां मैं एक ऐसी दवा जानता हूं। मुझे तुम मुट्ठी भर सरसों लादो।" लड़की वहां से भागी। पर बुद्ध ने रोक कर उससे कहा, "इस बात का ध्यान रखियो कि जिस घर में न तो कोई लड़का मरा हो, और न पति, माता, पिता या दास मरा हो, वहीं से सरसों लाइयो।"

"बहुत अच्छा" कह कर लड़की वहां से जल्दी जल्दी भागी। अपने मरे हुए बच्चे को भी वह पीठ पर लादे हुए लिये जा रही थी। पहले जिस से वह सरसों के बीज मांगती वह यह कहता कि ये रहे, ले जाओ। पर ज्यों ही वह कहती, कि कोई—पति...दास इत्यादि—इस घर में मरा तो नहीं, तब उसे यही उत्तर मिलता, कि पति ...दास में से कोई न कोई मर गया है। एक ने उत्तर दिया, बाला, तुम यह कैसा अनोखा प्रश्न करती हो? जीवित मनुष्य कम हैं, मरे हुए ज्यादा हैं।" अन्त में, जब उसने किसी घर को मौत से बचा हुआ न देखा,

तब बुद्ध के पास लौट आई। बुद्ध ने उससे पूछा "क्या सरसों के बीज मिलगये ?" (इस के पहले ही वह अपने मृत बच्चे को जङ्गल में रख आई थी) उसने उत्तर दिया मैं नहीं ला सकी, गांव के लोग कहते हैं कि जीते कम हैं, मरे अधिक हैं।" तब बुद्ध ने कहा, "तुमने सोचा था, कि केवल तुम्हीं ने अपना बालक खोया है, मृत्यु के नियम के अनुसार सब जीवोंके जीवन में स्थिरता नहीं है।" इस तरह महात्मा बुद्ध ने उस लड़की का अन्धकार दूर कर दिया, उसे सान्त्वना दी और वह उन की चेली हो गई।

दूसरे प्रकार का एक दृष्टान्त यह है:—

पूर्ण नाम का एक धनी व्यापारी था। जिस समय वह अपने जहाज़ पर था, किसी ने उसे बुद्धका नवीन मत सुनाया। उसने तुरन्त ही इस नवीन मत को अङ्गीकार कर लिया, और त्यागी हो कर, दूसरे लोगों को इसी मत में लाने के लिये वह भयानक लोगों में वास करने के लिये जाने की तय्यारी करने लगा। बुद्ध ने बहुत कुछ समझाया, परन्तु उसने एक न सुनी। वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। दोनों में इस प्रकार बातें हुईं:—

बुद्ध ने कहा, ओणा प्रान्त के मनुष्य, जिनमें तुम जाकर बसना चाहते हो, क्रोधी, निर्दय, वासनालिप्त, भयानक और असभ्य हैं*। जब वे लोग तुम्हें दुष्टतापूर्ण, पाशविक, जङ्गली गालियों से भरी और असभ्य भाषा में सम्बोधन करेंगे, तब हे पूर्ण तुम क्या करोगे ?

पूर्ण ने उत्तर दिया, "जब वे लोग मुझे कुवचनों से

---

* ये लोग आज कल के मोहमन्द, बक्काखिल इत्यादि पठानों के पूर्वज होंगे। ऊपर लिखे हुए दुर्गुण आज भी इन लोगों में पाये जाते हैं।

भरी हुई भाषा में सम्बोधन करेंगे तब मैं यह सोचलूंगा, कि श्रोण प्रान्त के मनुष्य सचमुच बड़े भले और सज्जन हैं जो मुझे देखते ही घूंसा और पत्थर से मेरी ख़बर नहीं लेते।" फिर उन दोनों में यों बात चीत हुई:—

"परन्तु यदि वे तुम्हें घूंसे और पत्थर ही मारें तो?"

"मैं उनको भला और सज्जन ही समझूंगा, क्योंकि उन्हों ने मुझे लट्ठ या तलवार से तो न मारा।

"परन्तु यदि वे तुम्हारे तलवार ही मारदें तब?"

"मैं उन्हें भला और सज्जन समझूंगा, क्योंकि वे मेरी जान तो छोड़ देंगे।"

"परन्तु यदि वे तुम्हारी जान ही लेलें तब क्या करोगे?"

"फिर भी मैं उन्हें भला और सज्जन समझूंगा, क्योंकि वे दुर्वासनाओं से भरे मेरे इस शरीर को दुःखमय संसार से दूर कर देंगे।"

"साधु! पूर्ण साधु! तुम्हारा धैर्य्य प्रशंसनीय है। तुम श्रोण प्रान्त में जाकर रहो, तुम्हारा उद्धार होगया है, अब तुम दूसरों का उद्धार करो; तुम पार उतर चुके हो, दूसरों को पार उतरने में सहायता पहुंचाओ; तुम ने शान्ति पाई है, दूसरों को शान्ति पहुंचाओ; तुम पूर्ण निर्वाण पाचुके हो, दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलाओ।

इस तरह उत्साहित होने पर पूर्ण इस कष्टसाध्य काम में निमग्न होगया। अहा! धर्म्म प्रचार के काम में और अन्य बातों में भी भारतवासियों की दृढ़ता और वीरता कैसी उज्ज्वलता के साथ दमदमाती है।

इस तरह के शौर्य्य और पुरुषार्थ से बौद्धों ने पृथ्वी की भयानक से भी भयानक जातियां शीलसम्पन्न कर डालीं।

महा असभ्य, जङ्गली और क्रूर लोग भी दानशील, उदार और दयालु होगये हैं। मंगोलिया और लङ्का इस बात के उदाहरण हैं। धार्मिक आवेश के बौद्ध उपदेशकों के ऐसे असंख्य उदाहरण हैं।

बुद्ध मरते मरते तक उपदेश करते रहे। जिस रात को उनके गौरवपूर्ण जीवन पर अन्तिम पर्दा गिरा एक तत्व-वेत्ता ब्राह्मण शास्त्रार्थ करने आया। उसकी बोली पहिचान कर, बुद्ध ने उससे कहा "यह समय शास्त्रार्थ करने का नहीं है"। धर्म का एक ही मार्ग है। वह मार्ग मैं ने निश्चित कर दिया है। बहुतेरे उस के अनुयायी हो गये हैं। उन लोगों ने वासना, अहङ्कार, और क्रोध को जीत लिया है, इन के जीतने से वे अज्ञान, शङ्का, और असत्य पर भी विजय पा चुके हैं। वे लोग विश्व-दया के प्रशान्त मार्ग पर जा चुके हैं। उन लोगों ने इसी जीवन में निर्वाण पा लिया है। मेरे धर्म में १२ बड़े २ शिष्य हैं। वे लोग संसार भर को दीक्षित कर रहे हैं। उनके बराबर ज्ञानी दूसरे धर्म में कोई नहीं। हे सुभद्र! मैं उन बातों को नहीं कहता जिनका मुझे अनुभव नहीं। मेरी २९ वर्ष की अवस्था थी जब से मैं पूर्ण ज्ञान के पाने के लिये उद्योग कर रहा हूं। यही पूर्ण ज्ञान निर्वाण का साधन है।" इस के बाद उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "प्रियवर्ग! जिस कारण से जीवन होता है, उसी से क्षीणता और मृत्यु भी होती है। इस को कभी मत भूलना। इस सत्य को सदा मन में रखना। मैं ने तुम्हें यही कहने को बुलाया था।" ये बुद्ध के अन्तिम शब्द थे। इस के बाद उन का शरीरान्त हुआ।

॥ इति ॥

राजपूत एंग्लो-ओरियण्टल प्रेस आगरा की उत्तम और उपयोगी पुस्तकें।

मेवाड़ का इतिहास—मूल्य १)
सीता जी का जीवन-चरित्र (सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण का सार)—मूल्य ॥।)
गृहिणी-कर्त्तव्य-दीपिका—मूल्य ।=)
राजर्षि भीष्म पितामह—मूल्य ।)
भारत-महिला-मण्डल दोनों खंड—मूल्य ॥।)
रमणी-रत्नमाला मूल्य ।=)
रमणी-पंचरत्न—मूल्य ।)
रूपवान, बुद्धिमान व बलवान सन्तान उत्पन्न करने की विधि—मूल्य ≡)
सतीचरित्र नाटक—मूल्य ।)
युवारक्षक—मूल्य ।)
छत्रपति शिवा जी—मूल्य ।)
भ्रमण वृत्तान्त—मूल्य ॥)
गृहशिक्षा—मूल्य ≡)
चन्द्रकला उपन्यास मूल्य ।)
गारफ़ील्ड का जीवन-चरित्र—मूल्य ।)
ढोरों की बीमारी का इलाज—मूल्य ।)
अबला-दुःख-कथा—मूल्य =)
गर्भाधान विधि व जन्मोत्तर विधि—मूल्य =)
बालहित—मूल्य -)॥
जगत् हितैषिणी—मूल्य ।)

मैनेजर राजपूत एंग्लो-ओरियण्टल प्रेस,
आगरा।